

ॐ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॐ

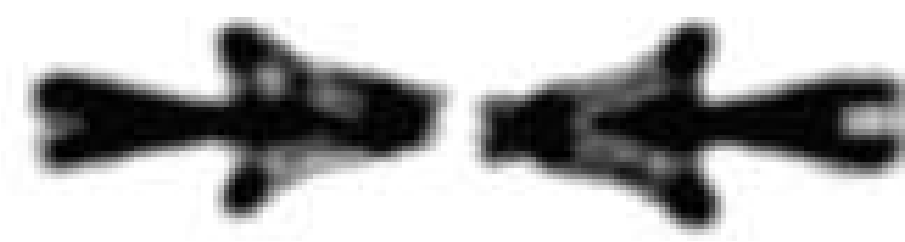
卐 भाषाभागवत 卐

(समाहात्म्य प्रथम एवं द्वितीय स्कन्ध)

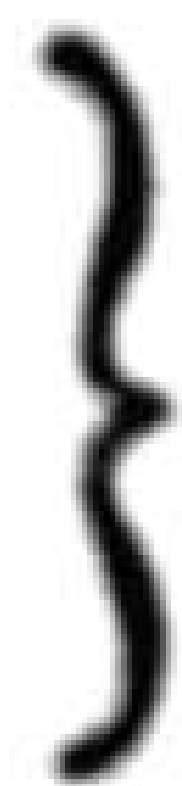


महाप्रभु-गौरांगदेववीथिपथिक—

श्रीश्रीरसजानि वैष्णवदासजी विरचित



भूलनसूतीया
सम्बन् २०१७



प्रकाशक—
कृष्णदामदास,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

ॐ बड़े बाबाजी श्रीश्रीराधारमणचरणदासदेवो जयति ॐ

भज-निताइ गौर राधेश्याम ।
जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द ।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥

-कृष्णदास

भूमिका

प्रस्तुत भाषाभाष्य के रचयिता श्रीरसजानिवैष्णवदास जी का संक्षिप्त परिचय यह है कि आप भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीप्रियादास जी के पौत्र तथा परम भागवत श्रीहरिजीवन जी के शिष्य थे। स्वयं आपने भागवतमाहात्म्य के परिशिष्ट में लिखा कि—

श्रीप्रियादास रसरासि कों पौत्र वैष्णवदास ।

ताही कौ रसजानि तिन कीनों नाम प्रकाश ॥

श्रीहरिजीवन गुरु कृपा पाय सोई रसजानि ।

श्रीभागवत माहात्म्य की भाषा करी बखानि ॥

आपने ब्रजभाषा में छन्दोबद्ध कई ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें से (१) गीतगोविन्दरस (२) भाषाभाष्य (समस्तस्कन्धों के) (३) भक्तमालमाहात्म्य (४) भक्तिरसवोधिनी (भक्तमाल की टिप्पणी) (५) भक्तिरत्नावली (भाषा) ये पाँच ग्रन्थ प्राप्त हैं।

गीतगोविन्दरस में आपने अपने सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य, रसिक शिरोमणि, रस के आचार्य श्रीजयदेवगोस्वामि जी के द्वारा विरचित प्रसिद्ध गीतगोविन्द संस्कृत काव्य का सरसता के साथ ब्रजभाषा में नाना छन्दों में सर्व साधारण बोधार्थ पद्यबद्ध अनुवाद किया है। इसका रचनाकाल सम्वत् १७७७ से पहले अनुमान किया जाता है। ग्रन्थ की पुष्पिका में—

“दास वैष्णवदास यह रसिकन हित सुखरास ।

भाषा करि वर्नन कियो सुख हिय होय विकास ॥

इति श्रीगीतगोविन्द कविराज जयदेवकृत भाषायां वैष्णवदास रसजानि कृतायां द्वादश सर्गः संवत् १७७७ पौष वदी २ लिखितं “जयदेव” ॥ यदि इस समय को लिपीकार कृत माना जाता है तो इससे पहले ग्रन्थ की रचना व प्रसिद्धि होना अवश्यम्भावी है। यदि यह ग्रन्थकार का उल्लेख है तो १७७७ सम्वत् मान

(२)

लेने पर कोई हानि नहीं है, क्योंकि ग्रंथकार के द्वारा भाषा-भागवत रचे जाने का समय १८२२ से लेकर १८३१ सम्बन्धित है। प्रायः समस्त स्कन्धों की पुष्पिका में इसी समय का निर्देश दिया गया है, गीतगोविन्द की रचना के पश्चात् ही भाषा भागवत की रचना सिद्ध होती है। गीतगोविन्दरस के प्रारम्भ में—

वंदि कृष्णचैतन्य चंद दुति करे अनंद जो ।
कहाँ गीतगोविंद सुने होय महानंद सों ॥१॥
रसिक अशेषनि को नरेश जयदेव भेव वित ।
कियौ अमल रसपान क्यों वे रस लहे समलचित ॥
ता रस कौ उज्जहार सार सौरभ सरसानौ ।
तिहि हित रसिक समूह व्यूह मधुकर घुमवानौ ॥

ग्रंथ की समाप्ति में—

श्रीमहाप्रभु चैतन्य तिनकी दया फली ।
कलि अवतार सुधन्य पतितन वली मली ॥
जयति गीतगोविन्द गावहु रसिक अहो ।
श्रीप्रियादास कवि भूप रसिकनि मुकुटमनी ।
जग जस छयौ अनूप तिन की कृपा कनी ।
जयति गीतगोविंद गावहु रसिक अहो ॥
श्रीहरिजीवन नाम मेरे गुरु सुमहा ।
तिनकौं कर अभिराम नित मम शीश अहा ॥

गीतगोविन्द में जिस प्रकार द्वादश सर्ग हैं ठीक उसी प्रकार इसमें द्वादश सर्ग हैं। गीतगोविन्द की अष्टपदी जिम राग-रागिणियों से विरचित है वे सब इसमें यथा रूप ब्रजभाषा में उसी प्रकार मौजूद हैं। इसकी प्राचीन प्रति नन्दकिशोरजी मुकुटवाले (वृन्दावन) के पास, गोस्वामि श्री अद्वैतचरणजी के पुस्तकालय में, हमारे पास भी मौजूद हैं। हमारी वाली प्रति अत्यधिक प्राचीन लिपी है। इन प्रतियों को देखकर इसकी

(३)

प्रेस कारी प्रस्तुत की गई थी। लगभग १५ वर्ष पहले हमने इसका प्रकाशन भी किया है।

वैष्णवदास जी के द्वारा विरचित दूसरा ग्रंथ भाषा भागवत है, जोकि समस्त भागवत का चौपाई छन्द में विशुद्ध ब्रजभाषा में लिखा गया है। प्रत्येक अध्याय के पहले दोहा छन्द से अध्याय का दिग्दर्शन किया गया है। इसके माहात्म्य तथा प्रत्येक स्कन्धों के प्रारम्भ में—

रसिकभूप हरिरूप पुनि श्रीचैतन्य स्वरूप ।
हृदै कूप अनुरूप रस उक्तयो बहे अनूप ॥

इस प्रकार महाप्रभु की वन्दना की गई है। यह ग्रन्थ मूल भागवत का ज्यों का त्यों सरल अनुवाद है। मूलगत शुद्ध अनुवाद के कारण इसकी प्रसिद्धि उस समय काफी होगई थी। नाना स्थानों में इसकी प्राचीन प्रतियाँ मौजूद हैं। इसकी कई प्रति तो देहली में हैं। नन्दकिशोरजी मुकुटवाले के पास एक प्रति, मांट के पास सुरीर हंतराम पुस्तकालय में एक प्रति, मुरादाबाद में एक प्रति, हमारे पास भी एक प्रति मौजूद है। मुरादाबाद की प्रति को छोड़कर अन्य प्रतियों को मैंने देखा है। लगभग १५००० चौपाई से इसकी रचना हुई है। ग्रंथकार की विशाल विद्वत्ता इस रचना से स्पष्ट है। मैंने पहले इसके दशम, एकादश, द्वादश इन तीनों स्कन्धों का एक ही जिल्द में दूसरा भाग नाम से प्रकाशन किया है। सम्प्रति माहात्म्य के साथ प्रथम, द्वितीय स्कन्ध का प्रकाशन करने में बाध हुआ। तृतीय से नवम स्कन्ध का प्रकाशन करने की आगे महती इच्छा है। इच्छा तो थी कि प्रथम से नवम पर्यन्त एक ही साथ एक ही जिल्द में प्रथम भाग नाम से प्रकाशित करने की। परन्तु इस समय अर्थाभाव के कारण यह कार्य न हो सका। बहुत दिनों से प्रस्तुत माहात्म्य के साथ दोनों स्कन्ध छप कर प्रेस में रखे हुए थे। स्वल्प जीवन है, नाना प्रकार संकल्प विकल्प उठते

रहते हैं। अतः शीघ्र ही इसी रूप से दोनों को प्रकाशित करने में वाध्य हुआ।

इसके प्रकाशनार्थ अर्था सहायता देने में दो व्यक्तियों का हाथ है। प्रथम स्कन्ध की अर्था सहायता मुझे भक्तवर श्रीमान् आत्माराम मुजफ्फरनगर वालों के द्वारा प्राप्त हुई थी। दूसरे स्कन्ध के सहायक श्रीमान् केशवदेव जी (खंडेलवाल) जिनका गौलोकवास होगया है तथा जो मुझ पर अत्यधिक श्रद्धा रखते थे। ग्रंथकार का तीसरा ग्रंथ-भक्तमालमाहात्म्य है प्रारम्भ में—

“रसिक रूप हरिरूप पुनि श्री चैतन्य स्वरूप।

हृदय कृप अनुरूप रम उभल्यौ बहे अनूप ॥

शेष में—प्रियादास अति ही सुखकारी। भक्तमाल टीका विस्तारी ॥

तिनको पौत्र परम रंग भीनों। भक्तन हित महात्म यह कीनों ॥

इसमें ८१ चौपाई तथा १० दोहे मौजूद हैं एवं भक्तमाल की महिमा कही गई है।

ग्रंथकार की एक कृति “भक्तिरत्नावलीभाषा” है। यह श्रीविष्णुपुरी गोस्वामि के द्वारा संकलित भक्तिरत्नावली की भाषा है। यह ग्रंथ छतरपुर महाराज की लाइब्रेरी में है।

ग्रंथकार की पांचवीं कृति भक्तिरसवोधिनी टिप्पणी है यह भक्तमाल एवं प्रियादास जी की टीका का आधार लेकर रची गई है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इसकी एक प्राचीन प्रति महाराज बनारस की लाइब्रेरी में सुरक्षित है। १३४०, १५ x ६ इंच। इसके मंगलाचरण में महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के साथ उनके परिकरों की वन्दना है यथा—

“वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितंकृष्णचैतन्यदेवम्” इत्यादि।

गौदीय पक्ष में इतने पुष्ट प्रमाण रहते हुए भी रसजानिवर्धनवास जी को निम्नार्को कह देना महान् भ्रम है।

—कृष्णदास बाबा

• श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति •

❀ भाषा भागवत महात्म ❀

दोहा—रसिक भूप हरि रूप पुनि, श्रीचैतन्य मरूप।

हृदय कृप अनुरूप रस, उभल्यौ बहे अनूप ॥ १ ॥

श्रीप्रियादास रस रास को, पौत्र वैष्णवदास।

ताही को रस जानि कै, कीनो नाम प्रकास ॥ २ ॥

श्रीहरि जीवन गुरु कृपा, पाय सोई रसजानि।

श्रीभागवत महात्म की, भाषा करी बखानि ॥ ३ ॥

विष्णुरात श्रीवज्र हित, मुनि सांडिल्य बुलाय।

दूर कियो संदेह को, या पहिले अध्याय ॥ ४ ॥

देवी सरस्वती नारायन। वंदि नरोत्तम के पुन पायन ॥

बहुर व्यास जु को सिरनाय। बर्नन करौ ग्रंथ सुख पाय ॥

ऋषय ऊचुः—

अपनो पौत्र परीछत आहि। गजपुर में दै राज सु ताहि ॥

बज्रहि मथुरा में बैठाय। हरि के विरह धर्म सुत छाय ॥

अहो उत्तराखंड गए जब। तिन दोऊ कैसे कहा कियो तब ॥

सूत उवाच—

धर्म पुत्र बन गवन कियो जब। बज्रनाभ के देखन को तब ॥

नृपत परीछत मथुरा आए। बज्रनाभ लखि प्रेमभिगाए ॥

पुन काका के सन्मुख जाय। लै गए महलन सीस नवाय ॥

नृपहू बज्रहि उर लपटायौ। कृष्णचंद्र ही में मन छायौ ॥

रोहिण्यादि कृष्ण तिय जितौ। नृप सिर नाय सु पूजी तितौ ॥

पृथिवी पति जु परीछत आहि। तिनहू अति सनमान्यौ ताहि ॥

सुख सो बैठि सु श्रमहि गमायौ। पुन नृप बज्रहि बचन सुनायौ ॥

श्रीपरीक्षित उवाच—

हे सुत तुमरे पिता मुरारी। तिनने रक्षा करी हमारी ॥

पुन मम पितरु पितामह जिते। दुख समूह ते राखे तिते ॥

ताते हम ऊरन नहि हैं । वै जो कहौ सोई हम कहैं ॥
 सोचो जिन धन रिपु सेना जे । मन लगाय सेवौ माता ये ॥
 सुन यह वज्र हरपि के कही । अहो अपु उचित कहन को यही ॥
 तुव पित मोहि कियो उपकार । दई धनुष बिद्या निर्धार ॥
 ताते तनक हू चिंता नाही । दृढ़ हौं छत्री धर्म सु माही ॥
 वै इक चिंता आहि अपार । ताकौ कछु कीजै उपचार ॥
 मैं नृप हू बैद्यो मथुरा में । जन गए कहां पर्यौ चिंता में ॥
 यह मुनि विष्णुरात राजा जो । बज्रनाभ संसय काटन सो ॥
 बुलए श्री सांडिल्य नाम मुनि । नंदादिक के प्रोहित जे पुनि ॥
 सोइ कुटी तजि आए मुनिवर । पूजित हू बैठे आसन पर ॥
 नृप इत उत की बात कही पुनि । ते मुनि हरपि दुहुं बोले मुनि ॥
 अहो चित दे ब्रज रहस सुनो अब । व्यापक ते ब्रज कहत याहि सब ॥
 गुनातीत परब्रह्म सु नाम । मुक्तनि अव्यय सुख को धाम ॥
 तहाँ नंद नंदन जो अनूप । राजत हैं नित सुख के रूप ॥
 आत्माराम और पूरन काम सो । अनुभौ करे प्रेम भीजे जो ॥
 तिनकी आत्मा रधा नाम । तास रमन ते आत्माराम ॥
 गोपी गोपक गाय बिहार । ये ताके सु काम निर्धार ॥
 ते नित ताके पूरन जाते । पूरन काम सु कहियत याते ॥
 यह याको रहस्य जो आहि । प्रकृति ते परे सु कहियतु ताहि ॥
 माया करि खेलत हैं ते जय । और तास लीला देखें तब ॥
 जा लीला में तीन गुननि कर । पालन प्रलय सृष्टि होय नृप बर ॥
 यी तिदि द्वै लीला विचार की । इक वास्तवीरु व्यवहारि की ॥
 सो वास्तवी जु आपै लहै । व्यवहारकी जीव जु चहै ॥
 पहली बिना सु दूजी नाही । दूजी मिलै न पहली माही ॥
 व्यवहारकी लीला जाई । हम तुमको गोचर है सोई ॥
 तीनों लोक जा धरनी माही । मथुरा मंडल हू है ताही ॥
 ताही में ब्रजभूमि सु नाम । अहा दुर रखो तत्व सु जामें ॥

कवहु कि प्रेम पूर्ण जौ अहौ । तिन्है तत्व सो भासत लहौ ॥
 कवहु द्वापर अंत होय जब । गोप्य चरित देखन हारे तब ॥
 इक ठारे सब होय आय धर । तब सोई लीला प्रगट करत हरि ॥
 चाह निहारनि तहा मिलावन । औ अव त्यो प्रगटत मन भावन ॥
 तब औरौ देवादिक जिते । हे नृप सब ठां प्रगटत तिते ॥
 सयही के मन को मान्यो करि । अंतर्धान होत है श्रीहरि ॥
 ताते तीन भाति के प्राणी । प्रथम इहां हैं हे मुखदानी ॥
 एक नित्य इक चाहन हारे । तीजे देवादिक सु उचारे ॥
 ते तौ पहल द्वारका माही । प्राप्र किये हरि संशय नाही ॥
 पुन तिनको हति मूसल द्वार । थाप दिये निज निज अधिकार ॥
 प्रेम रूप चाहन हारे जे । नित्यनि में जब राखि लए ते ॥
 तब तेऊ अदृश्य भये याते । देखन कोऊ जोग्य न जाते ॥
 व्यावहारकी लीला माही । जे जन ते तहां जोग्य सु नाही ॥
 ते ह्यां आए देखौ अहौ । याही ते यह निर्जन लहौ ॥
 यह हो बज्रनाभ ताते पुनि । चिंता करौ न मम बानी सुनि ॥
 पुन अपु इहा बसावौ गाव । धरि हरि लीला उचित सु नाव ॥
 अहो यह भूमि सेइयै आछै । सबै सिध तुम पैहौ पाछै ॥
 रहो दीध मथुरारु महावन । नंद गाव बरसानौ गोधन ॥
 सेवौ कुंडरु कुंज नदी गिर । परजा बढें तुम सुख पैहौ फिर ॥
 यह हे चिदानंद धरनी जो । तुमे जतन सो सेव्य आहि सो ॥
 पुन इहा हरि लीला थल है जे । मम करुणा करि तुमे फुरौ ते ॥
 अहो वज्र जु ऊधव है जो । ईहि सेये तुम को मिलिहैं सो ॥
 ताते याको रहसि जु आही । मातनि सहत जानिहौ ताही ॥
 यह कहि हरि सुमिरत गमने मुनि । बज्ररु विष्णुरात हरपे पुनि ॥
 इति श्रीस्कंधपुराणे श्रीभागवतमहात्म्ये भाषा रसजानि कृते

• प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ द्वितीय अध्याय ॥

दोहा-कालिंदी के वचन सुनि या दूजे अध्याय ।
सबही उधव को मिलन कियौ समाज बनाय ॥

श्रुत्य ऊचु:-

अहो सूत सांडिल्य गए जब । तिन दोउ कैसे कहा कीयौ तब ॥

सूत उवाच:-

इन्द्रप्रस्थ ते विष्णुराति तव । मथुरा ल्याय प्रजा राखी सब ॥

मथुरा और पुरातन वानर । माननीय ते किये भूप वर ॥

वज्रनाभ गहि तास सहाय । पुनि सांडिल्य अनुग्रह पाय ॥

श्रीगोविंद गोप गोपी के । लीला थल प्रकास किये नीके ॥

नाबनि धरि बहु गांव बसाए । कूप बावरी कुंड बनाए ॥

श्रीगोविंदरु हरिदेवादि । प्रगट किये नृप रूप अनदि ॥

श्रीसिवादि कौ थापन कीयौ । भक्ति बढ़ो इह हृष्यौ हीयौ ॥

हरि जस गावन प्रजा उमाहै । ताही के राज्यहि सु सराहै ॥

एक दिन कृष्ण कांता जिनी । कृष्ण विरह सो व्याकुल तिनी ॥

इह कालिंदी आनंद छाई । लखि मत्सर तजि बोलत भई ॥

हे सुंदर हम हरि तिय जैमे । तुमहुं ता हरि की तिय तैसे ॥

हम तिह विरह सु पीड़ित अहौ । हे कालिंदी तुम न क्यों न कहौ ॥

सो सुनि तिनकी देख सुधाई । बोली हसत सु करुणा छाई ॥

श्रीकालिंदी उवाच:-

आत्माराम कृष्ण को अहौ । निश्चै राधा आत्मा लहौ ॥

ताकी हम दासी हे जाते । विरह हमै छीवत नहीं ताते ॥

हरि तिय सब तिह अस सु गाई । ताते हे संजोग सदाई ॥

राधा है हरि हरि है राधा । वंशी तिह सु प्रेम की साधा ॥

हरि नख चंद्र पांति अभिराम । तिह संग ते चन्द्रावलि नाम ॥

और रूप कौ प्रहल सु करिकै । रही दुहुनि सेवा रति भरिकै ॥

रुक्मिन्यादिक की प्राप्ति जो । मैं इनही के माहि लखी सो ॥

हरि ते तुमरौ हू नहि वियोग । पै न लखौ तुम ताते सोग ॥

अैसे हीं ह्या हे मुप पूर । पहिले जब आए अक्रूर ॥

तब गोपिन के विरहाभास । भयो सु उधव कीयौ निरास ॥

तुमरौऊ तिनमो होहु मिलाप । तौ नित पिय संग विहरौ आप ॥

यो सुनि कालिंदी ते हरि तिय । पुनि नै बोली भीज रखौ हिय ॥

निज प्रिय मिलन लालसा छाई । उधव दर्शन में मति लाई ॥

कृष्णकांता उवाच:-

हे सखी तुही धन्य जग मांही । पिय सो जासु विरह है नाही ॥

जाते सिद्ध कामना तुमरी । सोई अब आहि स्वामनी हमरी ॥

पै उधव ते सिद्ध हमारी । सो क्यों मिलै वही पिय प्यारी ॥

सूत उवाच:-

सुनि कालिंदी बोली सही । सुमिरति कृष्ण कला सो रही ॥

कालिंदी उवाच:-

चलत कृष्ण उधवहि कही हो । साधन भूमि वटिका आश्रम जो ॥

उधव साक्षात तहा राजे । जननि कौ ग्यान देत सुख काजें ॥

फल भूमी व्रजभूमि जु आहि । प्रथमी हि सहित रहिसि दई ताहि ॥

फल ह्या अंतरहित है जाते । उधव हु अलक्ष्य अब ताते ॥

गोवर्धन ढिग सखीथरा जो । तहा निश्चै श्रीउधव जु सो ॥

अंकुरबल्ली कौ सरूप करि । रहत है रज की चाह हिय धरि ॥

निज आनंद रूप जो आहि । श्रीहरि जू नै दीनौ ताहि ॥

ताते कुसुम सरोवर जहा । बज्र समेत सु राहि के तहा ॥

बीना बेनु मृदंग बजाय । करौ कीर्तन भक्ति बुलाय ॥

तब उधव कौ दरसन है है । तुमरौ मनवांछित सो कै है ॥

सूत उवाच:-

यह सुनि सबहिन आनंद पायौ । कालिंदी जू कौ सिर नायौ ॥

पुनि श्रीवत्सरु विष्णुराति जो । तिनकौ आय सुनायौ सब सौ ॥

सुनि दोऊ आनंदहि छए । तही जाय सब करत सु भए ॥

श्रीवृंदावन में गोवर्धन वर । ता ढिग सखीथरौ कुसुमोपर ॥
तह तलाव कृष्ण कीरतन छयौ । प्रगट सौ हरि बिहार ह्यै गयौ ॥
सवै अनन्य दृष्टि ह्यै पेखत । भार भूंकटनि ते तिन देखत ॥
प्रगटे श्री उधव अभिराम । धरे पीत पट माला श्याम ॥
बहुरो गुंज माल छवि पावति । गोपी बल्लभ कौ जस गावति ॥
तिहि आए समाज सोह्यौ यौ । फटक अटारी चंद उवै ज्यौ ॥
सब भए विसुधि द्वि सुख सागर । सुधि भए देखे उधव नागर ॥
हरि सरूप ताहि पूजत भए । सवै काम पूरन ह्यै गए ॥
इति श्रीस्कन्धपुराणे भागवत महात्म्ये भाषा रसजानि कृते

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ तृतीय अध्याय ॥

दोहा-उधव वरन्यौ भागवत या तीजे अध्याय ।

कलिजुग डांडनि परीछत पहले दयौ पठाय ॥

सूत उवाच:-

पुनि श्रीउधव जू ते लहे । कृष्ण कीरतन जे मिल रहे ॥
बहुर परीछत सो लपटाए । आदर करि ये वचन सुनाए ॥
हे नृप तुम नित धन्य हो याते । कृष्ण भक्ति करि पूरन जाते ॥
जो तुम कृष्ण कीरतन माही । छवि रहे कछु सुधि है नाही ॥
वअरु कृष्ण तियनि में तुम जो । करी प्रीति हमनै देखी सो ॥
हे सुत तोहि उचित यह याते । तन वैभव हरि कौ दयौ जाते ॥
द्वारापुर वासिन के माही । ये जन धन्य सु संसै नाही ॥
जिनके व्रज में वास करावन । अर्जुन को भापी मन भावन ॥
अहौ कृष्ण कौ मन ससि आहि । राधा तास प्रभाव जु चाहि ॥
तिनकी लीला वन किरननि करि । सोभित करत प्रकासति है हरि ॥
कृष्णचंद्र नित पूरन अहौ । तास कला सोरह जे लहौ ॥
जुक सहस्र प्रभा चिद्रूप । यह वन तिनही कौ सु सरूप ॥
अहौ यह व्रज दीन दुख हारी । रहे हरि दखन पाय मभारी ॥

या अवतार माहि हरि अहौ । सोडें जोग माया अति लहौ ॥
ताके बल सो निज भूलन करि । निश्चै ये व्याकुल हैं नृप वर ॥
कृष्ण प्रकास बिना जग माही । काहू होय सु ज्ञाननि नाही ॥
जीवनि कौ ताकी प्रकास जो । माया करि ढपि रह्यौ अहौ सो ॥
जय होय अटाउंमे द्वापर । तब निज माया दूर करे हरि ॥
तबही ताम प्रकास सु लहौ । सुतौ काल अब वीन्यौ अहौ ॥
और समें ताकी प्रकास जो । हे नृप श्रीभागवत करत सो ॥
हरि जन याहि सुनै गावै जय । निश्चै तहां कृष्ण आवै तब ॥
आथौऊ श्लोक भागवत को जहा । गोपिन सहत रहत हरि जु तहा ॥
याहि इहान सुन्यौ जिन पापनि । अपनो घात कियौ तिन आपनि ॥
नितही श्रीभागवत सुन्यौ जिन । मात तात तिय कुल तारो तिन ॥
याते विप्र सुविद्या पावै । छत्री बैरिन मारि भगावै ॥
बैस्य बहुत संपति को धारे । सूद्र सदा सुख सो दिन टारे ॥
काम तियन के पूरन करै जौ । सेवै ताहि न भाग्यवान कौ ॥
बहुत जन्म करि सिधि जु आहि । सुनै भागवत पावै ताहि ॥
हरि कौ भक्ति बहुर बढ़वार । रहति है श्री भागवत मभार ॥
मोहि कृपा करि दियो भागवत । सांख्यायन ते पाय बृहस्पति ॥
तिनकी कही कथा जो आहि । अहो परीछित सुनिए ताहि ॥
जहा भागवत की प्रसिधि जो । तासु संपदा को लखियै हो ॥

बृहस्पतिरुवाच:-

माया दिस श्रीकृष्ण चहे जब । गुननि सो सिब विधि विघ्न भए तब ॥
उत्पति पालन प्रलै मभारी । तीनों कौ कीनौ अधिकारी ॥
विधि भयौ नाभ कमल ते सही । ह्यै तिन ता हरि जु सो कही ॥
हे नारायन प्रमात्मा हरि । तुमे नवत मै आदि पुरुष वर ॥
तुम मोहि सरजन माहि लगायौ । पै यह रजगुन पाप सु छायौ ॥
तुव सुमिरन मिटवै नहि जैसे । हे प्रभु कृपा करौ तुम तैसे ॥
तब श्रीहरि भागवत जु आहि । करि उपदेस सु बोले ताहि ॥

अपनी सिद्ध हेत यह धारौ ॥ सात द्यौस विधि हरपि सु भारौ ॥
कृष्ण प्राप्ति हित कीनौ धारन । सात आवरन भेदन कारन ॥
ताही ते भयौ पूरन काम । वितरत नित्य सृष्टि अभिराम ॥
विष्णु स्वार्थ हेत जाच्यौ हरि । पालन में थाप्यौ है जिन करि ॥
कर्म ज्ञान करि प्रवृत्ति निवृत्ति सो । ता करि प्रजा पालिहों मैं सो ॥
धर्म विलाय जायगौ जव जव । करि अवतार थरपिहौ तब तब ॥
जे भोगन की इच्छा कैई । यज्ञादिक कौ फल ताहि दैहै ॥
जे विरक्त मोक्षहि मन धरिहै । पांच प्रकार मुक्ति ताहि करिहै ॥
मोक्षहि हु जे चाहे न अहौ । तिनको कैसे पालौ कहौ ॥
आपहि अरु लक्ष्मी कौ पाछै । क्यौ करि पालौ कहिए आछै ॥
ताहु कही भागवत धारौ । यात सब होय सिद्ध तिहारौ ॥
विष्णु हरपि लक्ष्मी संग लाती । मास मास की कथा सु कीनी ॥
तब दुष्कर पालन जो आहि । करन समर्थ भयौ सो ताहि ॥
विष्णु कथा कौ कहन लगे जव । लक्ष्मी सुनिबे को बैठे तब ॥
श्रीभागवत श्रवन है जोई । मास मास में होत है सोई ॥
अति सोई श्रीरमा कहै जव । द्वै द्वै मास सु विष्णु सुनै जव ॥
विष्णु रहत अधिकार सु माही । तातै तेसु सुचित है नाही ॥
लक्ष्मी हु निश्चित सु जाते । दोय मास होय कथा सु याते ॥
सिबहु स्वार्थ हेत जाच्यौ हरि । प्रलै माहि थाप्यौ है जा करि ॥
प्राकृत नित्य निमित्त उचारी । प्रलै करन कौ सक्ति हमारी ॥
हे प्रभु आत्यन्तिक मो में नाही । तातै बड़ौ दुख मन माही ॥
बृहस्पति उवाच:-

ताहु हरि सु भागवत द्यौ । ताहि सेय तिन तमगुन जयौ ॥
वर्ष वर्ष की कथा कही जव । आत्यन्तिक लय सक्ति भई तब ॥
श्री उद्धव उवाच:-

यह भागवत महात्म सु पाय । हरप्यौ मैं गुरु कौ सिर नाय ॥
तब ते विष्णु रीति मैं गही । सेऊ इक मास भागवत सही ॥

ताही कर मैं अति सुख छयौ । हरि कौ प्यारौ मीत सु भयौ ॥
पुनि हरि नै मौहि ब्रजहि पठायौ । जहां निज प्यारिन कौ गन छायौ ॥
विरह दुखित गोपीन कौ चाहि । श्रीभागवत सदेस जु आहि ॥
नित ही जो विहार करि छायौ । तिन मेरे मुख तहां कहायौ ॥
ताको तेसु जथा मति पाय । अपनौ विरह द्यौ बिसराय ॥
सो रहस्य मैं नहि चह्यौ । कछुक चमत्कार तौ लह्यौ ॥
निज अस्थान गवन कहि हरिकी । जव ब्रह्मादि गए निज घर कौ ॥
तब श्रीहरि भागवत मभारी । आपहि द्यौ रहस्य सुभारी ॥
पुन अस्वत्थ मूल बैठे जव । मो में सो दृढ़ करि दीनौ तब ॥
ताते ब्रज बेलनि में रहै । लोक बद्रीकाश्रम गयौ चहै ॥
ताने हम अपनी इच्छा करि । सब ठां सदा रहत हे नृप वर ॥
अब तौ भक्तनि कौ निरधार । कृष्ण प्रकास भागवत द्वार ॥
अब मैं कहौ भागवत याते । इन सब कौ होय काम सु जाते ॥
पै यह सिद्ध होयगौ तबही । आप सहाय करौगे जबही ॥
सूत उवाच:-

विष्णुरात कही सुनि सिरनाय । आपु भागवत कहौ सुख पाय ॥
पुन मोको आज्ञा दैहौ जो । मैं अपु की सहाय कैहौ सो ॥
सुनि उधव प्रसन्न हूँ कही । अहो कृष्ण धर त्यागी सही ॥
ताते कलि विधनहि करिहे तब । भली बात बरिबे लैहौ जव ॥
कलहि दंड दीजै अपु जाय । मैं इक मास भागवत गाय ॥
इनको प्राप्त करो लै तहां । कृष्ण कौ नित्य धाम है जहां ॥
सूत उवाच:-

नृप हरप्यौ चिंता पाई पुनि । निज मत उद्धव सों भाप्यौ सुनि ॥
मैं तुम कहे कलहि दंड दैहो । पै भागवत श्रवन क्यौ पैहौ ॥
करो कृपा मोहु पै याते । तुमरी चरन सरन मैं जाते ॥
सुनि यह उधव नृप सो कही । अहो तुम चिंता करौ न सही ॥
याके आप मुख्य अधिकारी । अबलों कर्म निष्ठ नर नारी ॥

बात हू याकी जानति नाही। अब या भरतपंड के माही ॥
बहु जन तुमरी कृपा सु पेहें। श्रीभागवत भवन सुख लेहें ॥
हरि सरूप मुकदेश हैं जोई। तुमे भागवत कहिहें मोहें ॥
तुम हरि नित्य धाम पेहौ जय। धर भागवत छाय जैहै जय ॥
तानै कलहि दंड दीजै पुन। दै परिकर्मा भूप गर्यो मुनि ॥
बखहू नै प्रतिबाहु जु आहि। अपनौ राज्य द्यौ ले ताहि ॥
श्रीभागवत सुननि के हेत। मातन संग तहां कियो निकेत ॥
पुन गोधन दिग उधव जु जौ। एक मास भागवत कह्यो सो ॥
तहा भलकी हरि लीला सोई। है सच्चिदानंदमय जोई ॥
सब हिय भलके कृष्ण जु नामे। सवनि अपन पौ देख्यो नामें ॥
रस निसानि प्रकासन हारे। है श्रीकृष्णचंद्रमा प्यारे ॥
तिनमें कला प्रभा रूपी जा। देखि अपन पौ तिया चर्की सो ॥
पुन प्यारे को बिरह बिलायो। अपनो नित्य धाम को पायो ॥
औरौ तहा हुते जन जिते। नित्य लीला पावत भए तिते ॥
जे व्यवहार माहि जन छाए। बेगही तिने अटस्य सु भए ॥
कुंज गाय गोधन वृंदावन। इनमें ते नितही हरिपत मन ॥
कृष्ण समेत बिहारहि करें। प्रेमिन ही की दीठ सु परें ॥
सूत उवाचः—

यह हरि जु की प्राप्ति जु आहि। जो जन सुनैरु गावै याही ॥
ताहि कृष्ण की प्राप्ति सु होई। दुखहू बहुर रहै नहीं कोई ॥

इति श्रीस्कंदपुराणे भागवत महात्म्ये भाषा रसजानि कृते

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

शेषा—कही भागवत भवन विधि, या चौथे अध्याय।

श्रोता के लखन कहे, पुनि वक्ता गुन गाय ॥

अप्य उवाचः—

अहो सूत तुम जीबहु भारी। यों ही नित बरनौ सुखकारी ॥

श्रीभागवत महात्म जु आहि। तुमन अपुर्व सुनायौ ताहि ॥
तास सरूप प्रमान सुनावौ। सुनिचे की पुनि विधिहि बतावौ ॥
वक्ता को पुन लखन कहौ। श्रोता हू को लखन अहौ ॥

सूत उवाचः—

श्रीभागवतरु हरि को अहौ। रूप सच्चिदानंद सु लहौ ॥
हरि में अटकी जिनकी आसै। तिनको जो माधुर्य प्रकासै ॥
भक्ति ग्यान विग्यानरु मुक्ति। बहुरो इन करि हैं मंजुक्ति ॥
माया मोहन निपुन जु आहि। अहो भागवत जानौ ताहि ॥
ता अछर अनंत को अहौ। को प्रमान जानै सो कहौ ॥
दिव्य दर्शन सौ ब्रह्मा को हरि। दीयौ दिखाय चतुश्लोकी करि ॥
अतिहि अवगाथौ ताकी जय। भए विष्णु मिव विधि समर्थ तब ॥
सुकर परिछत को संवाद जो। मंदमतिनि हित व्यास कीनो सो ॥
अष्टादश मद्म जो अहौ। याही भागोत ग्रंथ सो लहौ ॥
कलिजुग ग्रह गृहीत जो आही। सोई परम आश्रै ताही ॥
विष्णु कथा के श्रोता अहौ। उत्तम न्यून दोय विधि लहौ ॥
चातक सूयां हंसरु मीन। इत्यादिक उत्तम रस लीन ॥
ऊँट बैल भिड़हा भुरुंड। इत्यादिक हैं नून प्रचंड ॥
और साम्प्र सर सरिता जानौ। स्वांत बूँद हरि ग्रंथ सु मानौ ॥
सबै छोड़ि ताकी पीवै जौ। चातक नाम आहि श्रोता सो ॥
मार अमार जु ग्रंथन माही। तिनमें जो असार गहै नाही ॥
पय ज्यौ केवल सार गहै जौ। हंस नाम श्रोता जानो सो ॥
झीर समुद्र में मीन सु जैसे। रस हित चंचलता तजि तैसे ॥
थिर करि ह्वै रहै सर मैं लीन। मौन साधि सो श्रोता मीन ॥
औरौ अरु आछौ बोलै जो। सवहि देय सुख सूआ है सो ॥
पगे कथा में जे नर नारी। बोल ताहि दुख देय सु ल्यारी ॥
ज्यौ मृग रहै गान रस छाय। सो तिनको दुख देत कुकाय ॥
सो भुरुंड जु आप न करै। पुनि श्रोतन को सिद्धा धरै ॥

ज्यों भुरुंड नाम पंढी जों । साहस माकुरु कहि बरजै सो ॥
 आप तो सिंह जंभान लगै जब । डाढ की मांस काढ़ि ल्यावै तब ॥
 दाखरु भुस ज्यों सार अमार । मुनि सब गहै बेल निधार ॥
 मिष्ट त्याग करि कटुक खाय जों । ऊंट नाम श्रोता जानो सो ॥
 जैसे ऊंट आम को त्यागै । नीब के चरिबे में अनुरागै ॥
 उत्तम नून जु श्रोता अही । औरो बहुत भेद तिन लही ॥
 क्रिया स्वभावन के अनुसार । भोग गर्व आदि आपार ॥
 तजि सब बाद सुनै हरि के गुन । सीस नाथ सनमुख बैठे पुनि ॥
 निपुन जोरि कर नवनहि धरै । सिप सौ है बिस्वामहि करै ॥
 रहै पवित्र विचारहि धरै । करि प्रश्नहि संदेह निवारै ॥
 पुन हरि के जन प्यारे जाहि । वक्ता कहत मु श्रोता ताहि ॥
 दीन दयाल मुहर्द निसकाम । हरि ही में जिहि मनि अभिराम ॥
 चतुर बहुत विधि समभावन जों । मुनीन सनमान्यौ वक्ता सो ॥
 अब भागवत श्रवन विधि हे मुनि । मुनिप जो मुख विस्तारै पुनि ॥
 चार प्रकार श्रवन ताको मुनि । राजस सात्विक तामस निगुन ॥
 सुख की ज्यौ अम सो दिन सात । मुनै सीघ्र जों जन हरपात ॥
 सो राजस है हे उत्तम मति । बहु पूजा ही की सोभा अति ॥
 एक मास अथवा द्वै मास । अम तजि स्वाद सहित सुखरास ॥
 श्रीभागवत श्रवन सात्विक सो । सवन आनंद बढ़ावत है जो ॥
 एक वर्ष अथा आलस करि । सुखद भागवत श्रवन करै नर ॥
 भूलन सुमिरन जुत जों आहि । तामस श्रवन कहै है ताहि ॥
 वर्ष मास दिन नमहि त्याग । आस्वादन समेत करि राग ॥
 श्रीभागवत श्रवन जों आहि । गुणातीत तुम जानो ताहि ॥
 विष्णुरातहु को दिन सात । श्रवन भागवत को विख्यात ॥
 सोऊ गुणातीत है याते । सातहि दिन की आयु ही जाने ॥
 और हू भाति त्रिगुन है जानी । श्रवन यथेच्छा निगुन मानौ ॥
 श्रीभागवत श्रवन जों आहि । जैसे बनै करै त्यो ताहि ॥

मुक्ति त्यागिहरि चरितन जे जन । चाहत यह पुरान नित को धन ॥
 जे संसार ताप सो तए । दुखित है मोछ माहि मन दए ॥
 कलि में यह भव औपद ताहि । या तन सो अहो सेइयै ताहि ॥
 जो जन चहै जगत बिपै सब । कर्म सिध यह ताहि देत अब ॥
 धन सामर्थ ग्यान बिन अही । श्रवन भागवत दुर्लभ लही ॥
 सोऊ भागवत श्रवन करे जौ । धन जन जस धरादि पावै तौ ॥
 यह ठां सबै मनोरथ पावै । अंत समें हरि के पद जावै ॥
 या कौ वक्ता श्रोता जों नर । ताहि सेइयै तन धनहु करि ॥
 ताते तास श्रवन यह पावै । हरि बिन धन सबही मु कड़ावै ॥
 श्रोता वक्ता द्वै विधि लही । हरि कामी धन कामी अही ॥
 इक विधि के दाऊ होय जोंपै । कथा माहि मुख बाढ़ै तोंपै ॥
 रसाभास होय द्वै विधि माही । फलहु प्राप्त होय पुनि नाही ॥
 औ पै हरि कामी जों आहि । होत दील सो सिधि सु ताहि ॥
 धन कामी की सिधि सु अही । सब विधि पूरन हुए सु लही ॥
 गुणातीत हरि कामी की पुनि । प्रेम ही उत्तम विधि है हे मुनि ॥
 जन सकाम विधि साधै तोंलौ । श्रीभागवत पूर्ण होय जोंलौ ॥
 न्हाय के नित्य क्रिया करि आछौ । हरि चरनोदक पीय सु पाछौ ॥
 पुस्तक की गुर की पूजा करि । कहै सुनै श्रीभागवतहि नर ॥
 मौन माथ पय भोजन करै । के हविष्य सो पेटहि भरै ॥
 ब्रह्मचर्य धर सयनहि करै । क्रोध लोभ मोहादिक तजै ॥
 कथा अंत भजन हि बिस्तरै । होय समाप्त जागरन करै ॥
 देय दक्षिणा द्विजन जिमाय । गुरहि देय पट भूषन गाय ॥
 औसी विधि सो श्रवन करै जब । मन मान्यौ नर फल पावै तब ॥
 पै सकामता याके माही । आहि स्वांग सोहत है नाही ॥

दोहा—श्रीप्रियादास रस रास की, पाय कृपा रसजान ।

श्रीभागवत माहात्म की, भाषा करी बखान ॥

इति श्रीस्कंधपुराणे श्रीभागवत महात्म्ये भाषा रसजानि कृते
 चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

❀ प्रथम स्कंधः ❀

॥ प्रथम अध्याय ॥

कोश—रसिक भूप हरि रूप पुनि श्रीचैतन्य सरूप ।

हृदै कृप अनुरूप रस, उभल्यौ बहै अनूप ॥

राधा चरन अरुन मन धाऊं । सीस नाथ इक बात सुनाऊं ॥
हे राधे सुन बिनती मेरी । कृपा कटाछ जु चाहौं तेरी ॥
तिह कटाछ जल सीचों ताहि । बीज रूप हिय बानी आहि ॥
सब अंग सुंदर मेरी कविता । सुंदर करो प्रेम रस सविता ॥
सब कवि कहत वदन छवि ससि सम । अपने मुख सम करो काव्य मम ॥
ससि समान जिन करिहो सजनी । प्रगट कलंक हात जिह रजनी ॥
अर्थ गंभीर करो पुनि औसी । नाभि गंभीर बिराजत जैसी ॥
दुरजन जन मन छेदहु ऐसे । प्रीतम हिय द्विग भेदत जैसे ॥
भाव बढ़ावत दरसन ऐसे । मम कविता मैं गुन होय तैसे ॥
तुव बियोग मन धर्म मिटावै । औसैं काव्य न दोष रहावै ॥
अहो कृष्ण गोविंद विहारी । बिनती सुनो हमारी प्यारी ॥
तुमे त्रिभंग कहत जन सबै । मत मम काव्य बिगारो अबै ॥
जो पै करो चिकुर सम करो । जिन कर सब जनके मन हरो ॥
व्यास चरन हे मन सुमरन करि । बिघन बिनासन दुख नासन हरि ॥
त्रिविध ताप जन जरत बचाए । सक्ति सहित भगवत गुन गाए ॥
श्रीसुकदेव रसिक मन रंजन । नैन बिसाल कमल दल गंजन ॥
मचिकन घूंघरवारी अलकैं । छूटि कपोलनि भांडैं मलकैं ॥
अधर मुधर गुलाल छबि छीनी । ऊच नासिका सोभा भीनी ॥
उज्जल कंठ तुलसी की माला । तीन संखवत रेख रसाला ॥
सोभा भरे अंग सब ऐसे । भरत भराय ढरै छबि जैसे ॥
रोमावलि तहां यह छबि पाई । मनु हिय हरि सरूप की छाई ॥
रेखा तीन नवीन तहां है । नाभ सरोवर छबि जु महां है ॥
लब बाहु नख सोभा औसैं । पारजात नव पल्लव औसैं ॥

प्रथम स्कंधः

१५

अरुन चरन सोभा कहो कहा । ना पर नख सोभा भई महा ॥
मानो चंद्र सहित तारागन । श्रीजुत आनि परो परि पायन ॥
कृष्ण रूप मद सो मतवारे । चंदे जात जिन जिननि निहारे ॥
नंद नंदन लीला अनुरागी । जिनके ध्यानहि ओ मति पागी ॥
श्रीचैतन्य रूप मन राखो । तिनमो एक बिनती भापो ॥
प्रेम वरम सब जगत दूयावो । मेरी हू कविता आन न्हावावो ॥
श्रीनित्यानंद सुनो वा तिनको । नित्यानंद देहु श्रोतनि को ॥
श्रीप्रियादास चरन मन राखो । पाय चातुरी भाषा भापो ॥
श्रीहरि जीवन जू की जीवन । जीवन जीवन कहत सजीवन ॥
जो लो कृष्ण प्रसाद न पावै । तौ लौ रसना रस ना आवै ॥
श्रीभागवत कल्पतरु अही । ओंकार तिह अंकुर लहो ॥
कृष्ण हृदै धरनी रम रूप । भक्ति थावरे बढ़ो अनूप ॥
ताकी द्वादस गुदिया भारी । पैमठ घाटि चार मै डारी ॥
अष्टादस सहस्र पल्लव करि । मन कामन प्रबक सरबोपरि ॥
सास्त्र पुरानरु बेद बनायो । व्यास हिये संतोष न पायो ॥
तब नारद उपदेसहि पाए । भगवतगुन वरनन के चाए ॥
प्रारंभत भागवत पुरान । करत मंगलाचरन सुजान ॥
दोहा—प्रथम मंगलाचरन छह सौनक प्रश्न बखान ।

आदर करिके सूत को प्रथम ध्याय यह जान ॥

व्यास उवाच—

जग उपजावै पालै दहै । व्यापक है न्यारौ पुनि रहै ॥
जिन हिय करि बिधि बेद पढ़ायो । जामे मोह बड़नि हू पायो ॥
स्वप्रकास सर्वग्य बिराजत । जाते भूठो सांचो लागत ॥
माया रचित जगत यह औसे । मृग मरीचक को जल जैसे ॥
कपट रूप माया जो आहि । अपने तेज बिडारी ताहि ॥
औसो सत्य जु ईश्वर आहि । हम सब ध्यान करत हैं ताहि ॥
अति सुंदर भागवत पुरान । श्रीनारायन कियो बखान ॥

मुक्ति प्रजंत त्याग फल जामें । औसो परम धर्म कहो तामें ॥
निर्मत्सर जाके अधिकारी । तीन ताप जड़ नासक भारी ॥
मंगल फल को दाता भारी । प्रेम तत्व वर्नन सुखकारी ॥
और प्रथ जो पढ़ै विचारै । तौ कहा हरि हिय बेग पधारे ॥
यामें होय भवन इच्छा जब । हिय हरि मूरति आन छवै तब ॥
फल रस रूप भागवत नाम । बेद लता लागो अभिराम ॥
परमानंद रूप रस भरौ । मुक्त मुख ते धरनी परि परो ॥
अहां रसिक शृंगार उपासक । पान करो यह मुक्ति भए तक ॥
नैमिषार में सौनक जिते । यग्यारंभ करत भए तिते ॥
वर्ष हजार नियम करि लियो । भगवन प्राप्ति मांहि मन दियो ॥
इक दिन अगन होम करि मुनि सब । आदर करि सूतहि पूछी तब ॥
श्रवण ऊचुः—

हे निष्पाप सूत सुखकारी । बड़ी आरबल है जु तिहारी ॥
श्री मुनि व्यास सखन के स्वामी । शब्द ब्रह्म के पारंगामी ॥
धर्म शास्त्र इतिहास पुरान । जानत जो जो व्यास मुजान ॥
तुम सब पढ़े कृपा तिन कीते । पुनि व्याख्या जु करी तिन कीते ॥
अरु जो मुनिवर जानत सबै । सो तुम सब जानत हो अबै ॥
जात सनेही सिष्य जु आहि । गुह्य ते गुह्य कहत गुरु ताहि ॥
इनमें जो कल्याणहि लहो । अहो सूत सो हम सो कहो ॥
या कलियुग में हैं जन जिते । आयु छीन बुधि छीन हैं तिते ॥
महामंद भागन करि मंद । रोगन करि व्याकुल दुख द्वंद ॥
नाना कर्म जुक्ति जे प्रथ । जोग्य है पुरुष चलन तिह पंथ ॥
याते जो प्रथन में सार । बुद्धि भ्रमर करि करि उद्धार ॥
भट्टा जुत हम सब सो कहो । जात मन प्रसन्न होय अहो ॥
ये हरि भक्तन के पालक नित । प्रगट देवकी ते भए जा हित ॥
अहो सूत सो सब तुम जानो । भट्टा जुत हम सो सु बखानो ॥
हरि को जनम जनम सुखदाई । रसदाई दुख को सुखदाई ॥

जो नर घोर नरक में परो । व्याकुल कृष्ण नाम उच्चरो ॥
सो नर तुरत जगत छिटकावै । कृष्ण नाम ते भै भै पावै ॥
हरि चरनन आश्रित भए जिते । परम सांति में दूबे तिते ॥
परमि करे ते मुद्ध सु औसैं । गंगाजल को सेवन जैसैं ॥
अति पवित्र हरि को जस आही । नारदादि मुनि गावत ताही ॥
चहिए हिय उज्जलता जाको । औसो कौन मुनै नहि ताको ॥
लीला करि अनेक अवतार । प्रगट करै हरि कर्म उदार ॥
गावत रसिक सदा तें अहो । भया जुत हम सो तुम कहो ॥
अरु हरि अवतारन की कथा । सुंदर बरन सुनावो जथा ॥
जो हरि स्वेच्छा माया करिकै । लीला करै महा मुद भरिकै ॥
कृष्ण चरित्र सुनत हम सबै । इंद्रि तृप्त न पावत अवै ॥
जिनको सुनत रसिक जन जिते । पद पद स्वाद लहत है तिते ॥
नर सरूप धरि रूप छिपायो । हरि बलदेव महा सुख पायो ॥
सुंदर चरित किए हरि जे जे । हम सो बरनन करिए ते ते ॥
अरु हम कलियुग आयो जानि । विष्णु क्षेत्र में बैठे आनि ॥
हरि की कथा भवन मन भई । ताते जग्य प्रतिग्या लई ॥
धीर्य हरैया कलियुग आहि । अहो हम तरो चाहत हैं ताहि ॥
ताते तुमे मिलाए प्रभु यों । सिंधु माहि दूबत मल्हा जो ॥
धर्म कवच ब्रह्मन्य ईस सब । सो हरि जू अप्रगट भए जब ॥
तब यह धर्म सरन किह गयो । कहो सूत तुम हरि मन दयो ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ द्वितीय अध्याय ॥

दोहा—प्रथम ध्याय में प्रश्न छह सौनक किये बखान ।
तामे उत्तर चार को दुतिय ध्याय यह जानि ॥

व्यास उवाच—

भयो मांद सौनक बानी सुनि । श्लाघा करत सूत बोले पुनि ॥

सूत उवाच—
जिनको संस्कार नहीं भयो। नौ गुण रहित संन्यासहि लयो ॥
लै संन्यास सु बन को चले। तिनके विरह व्यास कलमले ॥
अहो पुत्र अहो पुत्र पुकारे। तिनकी ओर न नेकु निहारे ॥
तरु में पैठ दियो उत्तर फिर। ता श्री सुक को मैं नावन सिर ॥
भव समुद्र अग्यान जु आहि। जे नर नरो चहत हैं याहि ॥
तिनको प्रेम भक्त दाता इक। वेद सार पुनि तत्व प्रकासिक ॥
श्री भागौत जु गुह्य पुरान। करुना करि मुनि कियो बखानि ॥
ऐसे व्यास सुवन सबके गुर। तास सरन है सूत पंगनि धुर ॥
देवी सरस्वती नारायन। वंदि निरोत्तम के पुनि पायन ॥
जै सरूप भागौत पुरान। तब बखान नर करै मुजान ॥
हे मुनि श्रेष्ठ सबै तुम याते। लोकनि मंगल पूछौ जाते ॥
कृष्ण चरित्र प्रसन्न तुम करी। जाते मन प्रसन्नता भरी ॥
नर को धर्म श्रेष्ठ है सोई। जाते भक्ति कृष्ण में होई ॥
बिघन रहित कामन तें रहै। जाते मन प्रसन्नता लहै ॥
भक्ति जोग हरि में जु लगावै। सो बैराग ग्यान उपजावै ॥
सुंदर धर्म बनाय कियो नर। यावन तोले पाव रती कर ॥
जो हरि कथा रति न उपजावै। तौ केवल श्रम सबै कहावै ॥
धर्म जु मुक्ति हेत है जाको। धन फल योग्य नाहिनै ताको ॥
जो धन हरि सेवा को जोग। ताको फल कछु बिषै न भोग ॥
इंद्री मोद तास फल नाहीं। जों लौं जीवै तों लौं आहीं ॥
जीवन को फल तत्व ध्यायवौ। कर्मन करि नहि स्वर्ग जायवौ ॥
अद्वयग्यान नाम है जाको। तत्व नाम तत्ववित कहै ताको ॥
कोई ब्रह्म कोई भगवान्। कोई परमात्मा करै बखान ॥
कथा श्रवन करि भई जु भक्ति। ग्यान बैराग दोऊ करि जुक्ति ॥
ता कर श्रद्धा सहित जिते मुनि। देखत ता तत्वहि हिए में पुनि ॥
ताते जिते धर्म हैं द्विज बर। तिनको पल इक है तोषन हरि ॥

ताते द्विज हरि भक्तनि के पति। नर कों नित तामें करिबै रति ॥
तिनकी कथा ध्यान पूजन पुनि। नित ही करन जोग जन हे मुनि ॥
जाके ध्यान खड्ग कों गहि करि। कर्म गाठ काटन प्रवीन नरि ॥
जाकी कथा सुखहि विस्तरै। तामें कहो कोन रति करै ॥
अनि पवित्र तीर्थ सेवै जब। साधु समागम नर पावै तब ॥
ताते कृष्ण कथा के मांही। होय प्रेम मुनि संसै नाही ॥
भक्त सु हृदै हरि मंगलकारी। जिनकी कथा देह सुख भारी ॥
जो नर सुनै पैठि हरि ता हिय। काम वासना दूर करन जिय ॥
ऐसी श्री भागौत भवन ते। होत अमंगल नष्ट सु मन ते ॥
तब उत्तम जस श्रीभगवान। तामें रति होय गाढ़ महान ॥
तमो रजोगुन तें जे भए। काम लोभ चित में छै गए ॥
छूटि तिनों सो सतोगुनी चित। हे मुनि होय रहै प्रसन्न नित ॥
ऐसे भगवद्भक्तिहि पाय। जाको मन प्रसन्न है जाय ॥
ताको सब संगहू छूटि जावै। कृष्ण तत्व को अनभौ पावै ॥
नर अपने हिय हरि देखै जब। हृदै गांठि बिंद जाय सबै तब ॥
संसै जिते तिते कट जावै। पुनि सब कर्म नास को पावै ॥
याही तेज परम प्रवीन। परम भगन तासै है लीन ॥
वासदेव श्रीहरि में नित्त। करै भक्त सोधै जो चित्त ॥
सत रज तम ये माया के गुन। परम पुरुष इन सहित होय पुनि ॥
थित उत्पति लय इच्छा करी। हरि सिव विद्य त्रय मूर्ति धरी ॥
तिन में सत्त्व मूर्ति हरि जोई। ताते नर को मंगल होई ॥
मुख्य काण्ट ते धूमा जैसें। ताते अगन बेद में जैसें ॥
श्रेष्ठ सबन ते जानो सतगुन। जाते होत ब्रह्म दरसन मुनि ॥
याही तें पहिलै सब मुनि बर। भजे विसुद्ध सत्त्व मूर्ति हरि ॥
तिन मुनि मुखियन जो अनुसरै। सोऊ जगत को मंगल करै ॥
जो कोई या संसारहि तजै। सो नर सांति मूर्ति को भजै ॥
घोर रूप जे पति भूतन के। निंदा छोड़ि त्याग करि तिनके ॥

रजतम में सुभाव है ताको । सुत संपति प्रभुता मन जाको ॥
निज समान सों पित्ररु प्रेत । प्रजा पतिन को भजत संहत ॥
जग्य जोग अरु वेद जु कर्म । ग्यान तपस्या गति पुनि धर्म ॥
हे सौनक औरी हैं जिते । बासुदेव पारायन तिते ॥
सोई निरगुन श्रीभगवान । जाकी महिमा कही बखान ॥
प्रकृति कार्य कारन गुन मई । ता कर जग रचना निरमई ॥
गुन मय वस्तु रची माया करि । तिनमें धसि भासत जैसे हरि ॥
जैसे कोऊ होय गुनवान । तहूँ दिए पै करि विग्यान ॥
ज्यो काठनि में एक अग्नि जो । नांनं भांति प्रकास करै सो ॥
त्यों सर्वात्म ईस मुरारी । करै प्रकास सु सबन मंभारी ॥
पंचभूत तन मात्रा है मुनि । मन समेत ग्यारह इंद्री पुनि ॥
इन करि सब जग आप बनावै । करि प्रवेश पुनि भोग भुगावै ॥
यों हरि जग के सिरजन हार । करि सु प्रेम लीला अवतार ॥
सुर नर पमुनि मांदि बपु धरै । सतगुन करि जग पालन करै ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

दोहा:-पुरुषादिक अवतार को चरितन सहित बखान ।

ताही करि मुनि प्रश्न को उत्तर तीजै जान ॥

सूत उवाच:-

पहले मृष्ट करन भगवान । पुरुष रूप को गह्यौ मुजान ॥
महदहंकारु तनमात्रा जुत । एकादस इंद्री करि अद्भुत ॥
तिह हरि मैत जलन में करी । जोगनीद नैनन में भरी ॥
विश्व मृजन को पति विधि जोई । नाभिकमल ते प्रगट्यौ सोई ॥
जा हरि को सरूप मुखकारी । सुद्ध सत्व तेजोमय भारी ॥
जाके जिते अंग हैं मुनिवर । लोकनि की रचना है नित करि ॥
ता हरि को सरूप मंगल करि । जंघा चरन वदन सहसनि करि ॥

नासा नैन कर्न मिर राजै । कुंडल मुकट अनेक बिराजै ॥
जिते विवेकी मुनिवर आही । ग्यान नयन करि देखें ताही ॥
हरि के मय अवतारन को मुनि । यह आश्रे अरु बीज अछै पुनि ॥
तिनके अस अंस पुनि तिन करि । निस दिन होत रहति पसु सुर नरा ॥
सो हरि प्रथम भए सनकादिक । दुश्चर ब्रह्मचये श्रीपासिक ॥
दूजै हरि सूकर वपु धरी । सब लोकन को मंगल करी ॥
गई रसातल धरना जोई । ल्याए कटि अहो मुनि सोई ॥
तीजै हरि नारद है गाई । पंचरात्र जहां कर्म घटाई ॥
चौथे धर्म तिया अभिराम । प्रगटे नर नारायन नाम ॥
दुश्चर सांत तपस्या जोई । जग के मुख को कीनी सोई ॥
भए पांचवें कपिल सिद्धवर । सांख्य सास्त्र भयो नष्ट काल करि ॥
जामें तत्व समूह जु आहि । कहो आसुरी रिप सों ताहि ॥
अत्रि पुत्र करि जब हरि बरै । दत्तात्रेय छटै अवतारै ॥
अलरक अरु प्रह्लाद महान । इनसों वरन्यो आत्म ग्यान ॥
रुचि तें आकृती में भए । जग्य नाम अवतार सुनिए ॥
मिलि निज सुत देवन के गन हरि । पाल्यो स्वायंभू मन्वंतर ॥
नाभि की तिया मेरु देवी करि । भए तामें आठवें रिपभ हरि ॥
परमहंस धीरनि को जो मग । ताहि दिखायो अति दुस्तर जग ॥
जब सब रिपिन प्रार्थना करी । नवें देह तब पृथु की धरी ॥
हे मुनि यह कमनीय सु यातै । धर ते दुही औपदी जाते ॥
चाछुप मन्वंतर जब भयो । दसवो मत्स रूप हरि लयौ ॥
पुन धरनी नौका करि करी । दैवस्वत मनु रक्षा करी ॥
सुर असुरन मिल समुद्र मथ्यौ जब । मंद्राचल जल धसन लग्यो तब ॥
एकादसो कछप वपु नयौ । मंद्राचलहि पीठ पै लयौ ॥
भए बारहें श्रीधन्वंतरि । बहुरि मांदिनी रूप धरी हरि ॥
असुरनि को जु मोह उपजायो । अमृत सबै सुरन को प्यायो ॥
चौदहां श्रीनरसिंह वपु धार्यौ । नखन हिरन्यकश्यप उर फार्यौ ॥

करत चटाई को नर जैमे । फारत जात नृनन को तैसे ॥
 पंचदसे बामन हरि भए । बलिके जग्य मांहि चलि गए ॥
 तीन पैड़ धर मांगी जाय । नाप त्रिलोकी लई छिनाय ॥
 भए सोरहे परमराम हरि । मुनि द्वेपी राजानि देखि करि ॥
 बेर इकीम तबै नृप मारै । ताकर धरनी भार उतारे ॥
 भए सत्रहे व्यास मु हरि ते । सत्यवती में पारामुर ते ॥
 छीन बुद्धि प्राणी देखे जब । करी वेद द्रुम की साखा तब ॥
 मए अठारहे राजा राम । सिधि करन देवन के काम ॥
 धारिधि निग्रहादि दे जिने । औरों किए पराक्रम किते ॥
 भए जादवन में हरि सोई । राम कृष्ण अवतार जु दोई ॥
 सबै धरनि को भार उतारौ । भक्त जनन को मुख विस्तारौ ॥
 कलिजुग मुनि बरतंगो जबै । अंजिन सुत बुध छैहै तबै ॥
 प्रगटे कीकट देस मभारी । असुरन के मोहन को भारी ॥
 चौर प्राय जब छैहै नरपति । तब कलि अंत प्रगटहै जगपति ॥
 बाइसे कल्की करि नाम । विष्णुजसा वास के धाम ॥
 हे मुनि मुद्र सत्वमय भगवन । ताते होय अवतार सु अनगन ॥
 व्यू जल पूरन सर ते प्रगटे । बहुत नदी नद कबहुँ न घटे ॥
 रिषि मुनिदेव प्रजापति जिते । मनु सुत सबै हरि कला निते ॥
 कोई अस कला हार कोई । कृष्ण स्वयं भगवानहि सोई ॥
 व्याकुल लोक असुर जब करै । तब तब प्रगटि सुखन विस्तरै ॥
 हरि के जनम गुह्य हे मुनिवर । होय पवित्र भक्ति जुक्त नर ॥
 सांभ सवेरै कहै सुनाय । सो सब दुखनि ते छुटि जाय ॥
 जीव ग्यान मय मुद्रि है अही । तिह सामान रूप जिन लही ॥
 अस्थूल सरीर जीव में धरौ । माया के गुन कर सो करौ ॥
 नभ में जैसे मेवन के गन । पवन मांहि पुनि जैसे रजकन ॥
 अग्याननि व्यापित कीन ज्यौ । द्रष्टा जीव मांहि देही त्यों ॥
 और अलख इक लिंग तन तामें । गुनन रचित कर बरनन जामें ॥

अति सुच्छम उपाधि कारन मुनि । जानें जन्म होत यह पुनि पुनि ॥
 कारज कारन रूप जु द्वै ये । रचित अविद्या करि जिय में ते ॥
 होइ निधृत ग्यान करि जबै । दरस ब्रह्म को पावै तबै ॥
 जब माया विद्या तै नासै । जीवहि सो स्वरूप तब भासै ॥
 पूरन मुद्र जान के सो मुनि । रमे रूप परमानंद में पुनि ॥
 कर्म अकर्ता के जे अहो । जन्म अजन्मा के ते लहो ॥
 अंतरजामी हरि के तेई । वेद रहस्य कविन कहे जेई ॥
 अति अमोघ लीला है जाकी । अहो सदा स्वतंत्रता ताकी ॥
 थिति लय जन्म विस्व के करै । तिनमें चिता सक्ति न धरै ॥
 अंतरजामी पट इंद्रि पति । बिपै दूर ते गहत गंधवत ॥
 मन बानी करि रूपरु नाम । विस्तारति जग करता राम ॥
 ता हरि की लीला मुनि जिती । नर कुबुद्धि जानै नही तिती ॥
 ता चतराई करि करि अमें । नट आचरन अग्य नर जैसे ॥
 जो कोई नर हरिपद भजै । नित्य निरंतर कपटहि तजै ॥
 सो जग करता चक्रपान की । पदवी जानै रस सुजान की ॥
 हे मुनि तुम सो दूजो नाहीं । मनकी व्रति धरी हरि माही ॥
 जानें जन्म मरन दुख रूप । पुनि पुनि होत नाहि द्विज भूप ॥
 यह पुरान भागवत नाम मुनि । वेद तुल्य दाता धन के पुनि ॥
 हरि के चरित जटित सुखकारी । व्यास कहौ जग मंगलकारी ॥
 भारत अरु वेदन का सार । सबै व्यास जू कियो धार ॥
 करिकै मुनि श्रीसुकहि पढ़ायो । ग्यानवान में श्रेष्ठ जु गायो ॥
 सो श्री सुक भागीत पुरान । कहौ परीवृत सों जु बखान ॥
 जब राजा रिषि राजन संघट । असन लै बैठे गंगातट ॥
 धर्म ग्यान दोऊ सहित जबै हरि । अंतरहित भए तब कलिजुग करि ॥
 नष्ट भयो जिनको द्रग ग्यान । तिनमें उयो यह सूर्य पुरान ॥
 हे सोनक भीसुक द्विजराज । कहत भए नृप सभा विराज ॥
 मैं ही तहां सुननि मुनि गयो । श्रीसुकदेव अनुग्रह भयो ॥

बुद्धि समान पद्यों में जैसे । हे मुनि तुम सों कहिहो तैसे ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

दोहा—तप प्रथादिक मुनि हिये किये बहुत जब दाह ।
तब भागवत बखान किये चौथे यह अवगाह ॥

व्यास उवाच:-

औसै कही सूत जूँ जबै । अस्तुति करत भए मुनि सबै ॥
सब में मुख्य वृद्ध कुलपति मुनि । रिगवेदी बोले सौनक मुनि ॥
सौनक उवाच:-

हे महाभाग सूत हे सत्तम । सब वक्तनि में तुमही उत्तम ॥
पुन्य कथा जु भागवत अहो । मुनि ने कही सु हम सों कहो ॥
कौन काल स्थान कौन पुनि । कौन हेत प्रेर्यो हो किहू मुनि ॥
संमटक भेद बुद्धि नहि जिनकी । मति एकाग्र सदा है तिनकी ॥
माया नीद कभूँ नहि पगै । श्रीसुक गूढ़ मूढ़ से लगै ॥
जब सुक नग्न विपिन को चले । पाछे लगे व्यास कलमले ॥
देव तिया जल न्हातही जिते । व्यासहि लखि लज्जित भई निती ॥
दौरि सवन मट दै पट लए । लखि मुनि तिन सों पूछत भए ॥
अहो देव तिय श्रीसुक जोई । नग्न जात तुम देखें सोई ॥
तब तुम नेकु न लज्जित भई । अब यह रीत कहा गहि लई ॥
तब सब तियनि व्यास सों कही । भेद दृष्टि हम तुमरी लही ॥
यह नर यह तिय तुम मुनि जानौ । भेद दृष्टि मति सुक में आनौ ॥
कुरु जंगल देसन में बसै । आय हस्तनापुर जब निकसै ॥
मूक मत्त जड़ से सुक मुनिवर । पहचानत भए कैसे पुर नर ॥
बहुरौ बिष्णुरात राजा सों । पांडो वंस प्रगट है तासों ॥
कैतें सुक संवाद जु भयो । जामें उदं भागवत लयो ॥
श्रीसुक जा गृहस्थ घर जाहि । गो दोहन लगि तहां ठहराहि ॥

एहो महाभाग श्रीसुक मुनि । करत तीर्थ से गृह तिनके पुनि ॥
सुत अभिमन्यु परीछत राजा । महाभागवत मुख के काजा ॥
तिनको जन्म बड़ा आश्चर्य । उनके कर्म कहो नरवर्ज ॥
पांडू वंस के मानस वर्द्धन । सब धरनी के राजा नृप मनि ॥
कौन हेत तज संपति दुर्घट । असन लै बैठे गंगा तट ॥
जा नृप के चरनन सिर नावै । मुख की वैरी धन बहु ल्यावै ॥
सो नृप दुस्तज संपति प्रांन । जुवा समे त्यागे कहा जान ॥
हरि परायन जन है जोई । देह हेत जीवै नही सोई ॥
लोकन दें द्रव्य कल्यानि । धारत देह भक्ति रस जानि ॥
पर उपगारी तन यह अहो । हूँ उदास छोट्यो क्यों कहो ॥
अहो सूत यह पूछी है जो । सर्वभ्रष्ट हमसो कहिए सो ॥
वेद बिना है जितने ग्रंथ । तुम सब तिनके जानत पंथ ॥
सूत उवाच:-

तीजो द्वापर जब मुनि भयो । जन्म व्यास जूने तब लयो ॥
सत्यवती में पारामर तैं । वेद व्यास प्रगटे श्रीहरि तैं ॥
एक समें मुनि व्यास अहो मुनि । न्हाय सरस्वती हूँ पवित्र पुनि ॥
नभ में भयो उदै सूरज जब । इकले मुनि इकांत बैठे तब ॥
भूत भविष्यत सब जानति मुनि । सफल विचार होत तिनको पुनि ॥
जाकी गति नहीं जानी जाय । भए औसैं जे कालहि पाय ॥
जग के धर्म व्यतीक्रम सबै । देखत भए व्यास मुनि तबै ॥
पुनि तिन काल सु जुग जुग भीतर । सक्तिहीन अल्पायु किये नर ॥
दुष्ट बुद्धि सत्या करि हीन । श्रद्धा रहित अभागी दीन ॥
दिव्य नैन करि श्री मुनि व्यास । लखि औसैं नर भए उदास ॥
तब वर्णाश्रम को जो प्यार । श्रीमुनि मन में कियो विचार ॥
चातुर्दोत्र कर्म है जोई । प्रजा सुख को देख्यो सोई ॥
तब मुनि जाय पढ़न में मन दै । एक वेद के चार किए लै ॥
स्याम अथर्वन रिग जजु चार । वेद व्यास मुनि किए उधार ॥

भारत और पुरान जु आही। बेद पांचवो जानों ताही ॥
 पद्यों पैल रिग बेद सुनाम। कवि जैमन गायो श्रुति स्याम ॥
 वैंसपायन है इक जोई। जजुर बेद में निपुन है सोई ॥
 नाम अंगरा साखा जामें। बेद अथर्वन है मनि तामें ॥
 भए निपुन सुमंतु निर्दे मुनि। भारत और पुरान जिते पुनि ॥
 तिनमें निपुन पिता मम जोई। नाम रोमहर्षन है सोई ॥
 तिन तिन रिपिन सु अपने बेद। तिनके किए अनेक सुभेद ॥
 तिनके सिष्य असिष्य सु मुनिवर। बेद वृद्ध साखा भई तिन कर ॥
 व्यास दीन कसल सुखकारी। सुगम बेद साखा विस्तारी ॥
 जैसे अल्प बुद्धि नर जानै। असे बेद सुगम कियो तानै ॥
 बेद सुननि को योग्य न तीन। सूद्र स्त्रीरु द्विजन में हीन ॥
 मंगल कर्म अजोग जिते नर। तिनको मंगल व्यास दिए धर ॥
 भारत कर व्याख्या विस्तारी। जीवन ऊपर दया विचारी ॥
 हे सौनक असे जु व्यास मुनि। पुन्य सरस्वती तट बैठे पुनि ॥
 सब प्रकार जग हित मन दयो। तऊ हिरदै संतुष्ट न भयो ॥
 अप्रसन्न मन व्यास धर्मवित। बैठि इकांत विचार कियो चित ॥
 पुनि मुनि मन में बोलत भए। अहो मैं व्रत अनेक करि लए ॥
 बेद अगिन गुरु पूजा करी। अरु तिनकी आग्या मन धरी ॥
 अरु भारत मिस करि मैं गायौ। सब बेदन को अर्थ दिखायौ ॥
 जा भारत में नीच नारि सब। अप अपने धर्महि देखत अथ ॥
 तौऊ पून मम जिय है जो। ब्रह्म तेज करि श्रेष्ठ महा सो ॥
 सोऊ स्व स्वरूप करि अहो। पून रहित सो भासति लहो ॥
 अथवा धर्म भागवत जिते। हरि भक्तनि को प्रिय हैं तिते ॥
 बेई अच्युत हूँ को प्यारे। ते मैं आछे नाहि उचारे ॥
 असे जान अपन यो हीन। पुनि मुनि बहुत भए दुख लीन ॥
 तब नारद तिनके घर आयौ। सरस्वती के तट जो गायौ ॥
 देवन करि पूजित नारद मुनि। आए लखि के उठे व्यास पुनि ॥

अथा जोग लै पूजा करी। श्रीरस जानि सांति रस धरी ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
 चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचम अध्याय

दोहा—सब धर्मन ते श्रेष्ठ हरि, गांन पांचवें जानि।
 व्यास चित्त संतोष को, नारद कियो बखानि ॥

सूत उवाचः—

बहु जस कर बीना अभिराम। देवन में रिष नारद नाम ॥
 सुख करि दिग बैठे जु व्यास मुनि। तिनसों हस बोले नारद पुनि ॥
 नारद उवाचः—

हे महाभाग पुत्र पारासर। हम सों कहो अहो यह मुनिवर ॥
 है संतुष्ट तुम्हारो चित्त। और सरीर कुसल सो भित्त ॥
 जानन जोग धर्म है जिते। अहो व्यास तुम जानें तिते ॥
 जाते सब अर्थन जुत है जो। अद्भुत भारत तुमनि कहो सो ॥
 और सनातन ब्रह्म जु आहि। जानौ ताहि मिलै पुनि ताहि ॥
 तऊ अकृतार्थ से तुम पुनि। सोचति क्यों सु अपन पे को मुनि ॥
 व्यास उवाचः—

यहो अगाध बोधि विधि तात। हे मुनि नारद सुन मोहि बात ॥
 जो तुम कहो सु सब मो मांही। तऊ संतुष्ट चित्त मम नाही ॥
 याको कारन मैं नहीं जानौ। ताते नारद तुम ही बखानौ ॥
 हे मुनि नारद गुह्य जु आहि। तुम सब नीके जानति ताहि ॥
 और अनाद पुरष है जोई। कारज कारन ईश्वर सोई ॥
 मन करि गुन द्वारा जग रचै। पालै हरै सबन सों बचै ॥
 ता हरि की तुम सेवा करी। जानत बात दुरी हू खरी ॥
 हे मुनि नारद सूरज जैसें। फिरत त्रिलोकी में तुम तैसें ॥
 फिरत पौन से तुम सब में मुनि। नरन की बुद्धि वृति जानत पुनि ॥
 शब्द ब्रह्म परब्रह्म मंझारी। व्रतरु धर्म करि निपुन हो भारी ॥

ताते तुम नारद मुनि अहो। हमरी जो घटती सो कहो ॥
 नारद उवाचः—
 अहो व्यास उज्जल हरि जस सों। करि विसेष बरन्यो नहीं तुम सों ॥
 जा करि हरि संतुष्ट न होई। महा तुष्ट हम मानत सोई ॥
 अहो व्यास मुनि श्रेष्ठ सवन ते। ज्यों धर्मादि किए बरननि ते ॥
 त्यों हरि के चरित्र सुखकारी। बरने नाहि कियो दुख भारी ॥
 सुंदर पद रचिना है जा में। जगत पवित्र न हरि जस तामें ॥
 तो वह काव्य गरत जूठन को। विषई कागानि के सुर मन को ॥
 परब्रह्म रमनीय सु आही। कमल समूह सु जानो ताही ॥
 तामें परमहंस नित रहै। काग गरत दिसि नेकु न चहै ॥
 जा में अलंकार नहीं छंद। और पर कृष्ण चरित्र सुखकंद ॥
 हरि के नामन को बरनत पुनि। सो जग को अघ नासक है मुनि ॥
 साधु हू ताही काव्यहि सुनै। गावै अरु ताही को गुनै ॥
 निरमल ब्रह्मज्ञान मुनि जोई। हरि के भाव बिना जो होई ॥
 जदिप कर्म नहीं जा माही। तऊ व्यास अति सोदति नाही ॥
 सदा अमल काम कर्म मुनि। अरु निषकाम कर्म जो है पुनि ॥
 ते जो हरि अर्पित नहि करै। तो कहौ सोभा कहा ते धरै ॥
 हे महाभाग पुन्य जस करी। सफल बुद्धि व्यास ब्रह्मधरी ॥
 सत्य मांदि रति आहि तिहारी। सब बंधनि की काटनि हारी ॥
 हरि की लीला बरनन करौ। चित्त वृत्त एकाग्रह धरौ ॥
 हरि के चरित छोड़ि मुनि व्यास। और कछु बरनन की आस ॥
 ता बरनन के नाम रूप करि। मति बिधिप्र होत तिह छिन नरा ॥
 ताकी मति कहूँ टिकै न अैसे। बड़ी पौन सों नौका जैसे ॥
 हे मुनि जे सकाम कर्मादिक। तिनमें नरासक्ति सोभाविक ॥
 पुन तुम तिने धर्म करि धर्यौ। यह तो अति अनर्थ लै कर्यौ ॥
 अब नर तेरी सांची बानी। मान तिही में थिरता ठानी ॥
 अरु जो साध निवारन करै। तिनकी बात कान नहीं धरै ॥

जाकी महिमा को नहीं पार। अैसे हरि ईश्वर सुख सार ॥
 ताको रूप निवृत्ति मारग करि। जोग्य जानबे को सु साधु नर ॥
 ताते तन अभिमानी नर को। करि मुनि चरित सुनाबो हरिको ॥
 जिन अपने धर्महि छिटकायो। हरि के चरनन में मन लायो ॥
 बिनही सिद्ध भजन तन तास। जो पै छुटि गयो हे व्यास ॥
 बहुरो नीच जोनि में गयो। तो कहा तास अमंगल भयो ॥
 जिन हरि बिन सब धर्म बनाए। ताने कहो कहा फल पाए ॥
 ऊपर नीचे फिरत जिते पुनि। तिनको जो नहीं प्राप्त होत पुनि ॥
 जाको जतन साधु सब करै। सुखनि मांदि ते मन नहीं धरै ॥
 बिना जतन दुख आवै जैसें। सुखौ काल करि आवै तैसें ॥
 हे मुनि हरि सेवा जो करै। सो तो नीच जोन में परै ॥
 तऊ न जग में भरमें अैसें। कर्म निष्ठ नर भटकै जैसें ॥
 सो वह साधु नीच तन पाए। भक्ति मुधा रस बस है जाए ॥
 है बसि हरि चरनन मन धरै। फेरि छोड़िबे को नहीं करै ॥
 जग की थिति लय जनम करै जो। विश्व रूप यह है ईश्वर सो ॥
 पुनि जग ते न्यारो जो आहि। तुम मुनि नीके जानत ताहि ॥
 तामें तुमें दिखायो अैसें। दिग दरसन कराइए जैसे ॥
 सफल बुद्ध हे व्यास महा मुनि। परमात्म जगदीस कला पुनि ॥
 जग के मंगल में मन दियो। होय अजन्मा जन्महि लियो ॥
 ताते आयो करिके आप। देखो अहो देहु तजि ताप ॥
 जो हरि को प्रभाव अति ही मुनि। ताके चरित करो बरनन पुनि ॥
 तब पांडित्य जग्य सुभ कर्म। बानी बड़ी बुद्धि अरु धर्म ॥
 सबको जु अखंडित यहै। हरि के चरितन को नित कहै ॥
 पहल जनम माहि हौ हे मुनि। रहो द्विजनि को दासी सुत मुनि ॥
 इक दिन तिनके हरिजन आए। बरपा रितु में तिने छवाए ॥
 बिप्रन मोहि अनूपम मानि। साधु टहल में राखौ जानि ॥
 मै हूँ तिनकी सेवा करी। साबधानता हिए मैं धरी ॥

तब सम दृष्टि साथ सब मोह पर। कीनी कृपा जानि सर्वोपर ॥
मैं हूँ इंद्रिजित मित बानी। रहो चपलता सब छिटकानी ॥
अरु जब हरिजन आग्या देंहि। तब हम तिनकी जूठनि लेंहि ॥
सोऊ एक बेर पाई हम। ताते भए बिनास पाप तम ॥
जब औसैं भेवा मन द्यो। तब मेरो चित उज्जल भयो ॥
तब उन साधुन के धर्मन में। हे मुनि उपजी रुचि मो मन में ॥
ते सब कृष्ण कथा मन हारी। मिलि गावै हे मुनि मुखकारी ॥
तिनकी कृपा भई हम पै मुनि। सरथा करि में मुने कृष्ण गुन ॥
जा हरि को जस प्यारो है अति। तामें मेरी हात भई रति ॥
जब रुचि कृष्ण कथा में भई। तब दृढ़ मति हरि में लगि गई ॥
धूल सूक्ष्म तन में माया करि। कल्पित देख्यो ब्रह्मरूप हरि ॥
चार मास साधुन गायो जो। उज्जल हरि जस हमन सुनौ सो ॥
तब मेरे दिए भक्ति भई मुनि। नास किए रज तम दोऊ गुन ॥
अहो ते साधु चलन जब लागे। दीनन पर बत्सल रस पागे ॥
तब अति गुह्यग्यान जो आहि। हरि को कहो कहौ मोहि ताहि ॥
मैं हूँ दीन बाल अनुचर पुनि। इंद्रिजित श्रद्धा जुत हो मुनि ॥
ता करि हरि पदवी में पाई। पुनि माया जीती जो गाई ॥
हे मुनि जो भगवान कृष्ण हरि। तिनमें अरपित कर्म करै नर ॥
तिन ते तीन ताप होय नास। यह फिर कहत भए हरिदास ॥
जो घृत नर निरोग उपजावै। सो जो और बस्त संग पावै ॥
तौ सोई घृत हे मुनि व्यास। नर के रोगनि करै सु नास ॥
अैसे क्रिया जो मुनि जिते। है संसार हेत को तिते ॥
सो जो हरि में अर्पित करै। तो नहीं फेर जन्म नर धरै ॥
जो नर हरि प्रसन्नता लिए। जग में करै कर्म मन दिए ॥
सो वह कर्म सुभक्ति सहेत। हे मुनि व्यास ग्यान को देत ॥
हे मुनि हरि की सिद्धा पाय। कर्मन को नर करै बनाय ॥
तब हरि सुमरन नाम ग्रहण को। जोग होत नर गुन बरनन को ॥

संकरषण प्रद्युम्न अनिरुद्ध। जिन हरि गहे रूप ये सुद्ध ॥
जो हरि मंत्र मूर्ति है हे मुनि। प्राकृति रूप नाहि जिनको पुनि ॥
ताको सीम निवायो यह कहि। जो नर जज्ञै कृष्णको नित्यहि ॥
ता नर को मुनि सब प्रकार करि। ग्यानवान जानो सर्वोपर ॥
हे मुनि यह आग्या यह जानि। मैं आचरन कियो सुख मानि ॥
तब हरि मोको ग्यान दियो मुनि। अरु एश्वर्य प्रेम अपना पुनि ॥
हे मुनि ग्यानवान मन धरो। तुम हूँ हरि जस बरनन करो ॥
हरि जस बिन मुनि और जु आहि। ता कर जानि सकै नही ताहि ॥
अरु अति दुख करि पीड़ित नर को। दुख नासन मुनि है जस हरि को ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते

पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

दोहा—पुर्व जन्म सोभाग्य को कृष्ण कथा सों सांनि।
नारद कहिदे व्यास सो छठे अध्याय यह जानि ॥

सूत उवाचः—

जन्म कर्म नारद के सुनि मुनि। सत्यवती सुत व्यास कही पुनि ॥

व्यास उवाचः—

हे नारद तोहि दे उपदेस। जब सब हरि जन गए बिदेस ॥
तब तुम कहो कहा मुनि करौ। अरु कहो जैसे कालहि तरौ ॥
पुर्व जन्म को तुव सुमरन मुनि। क्यों नहि काल कियो खंडन पुनि ॥
जो बहु कल बलिष्ठ महा है। यह मुनि हम सो कहो कहा है ॥

नारद उवाचः—

अहो व्यास मोहि दे उपदेस। जब सब हरिजन गए बिदेस ॥
तब हम बालक करत भए जो। हे मुनि सुनो कान दे के सो ॥
हे मुनि मेरी जननी जोई। स्त्री मूढ़ किंकरी सोई ॥
तऊ एक सुत मो को जानि। बांध्यो प्यार महा सुख मानि ॥
निस दिन मेरे सुख की चाहि। पै पर पराधीन सो आहि ॥

हरि आधीन लोक यह अमैं । काठ पृथ्वी नर वस जैसे ॥
 रहो हों पांच वरस को बाल । जानों नांही देस दिम काल ॥
 लखि माता को प्यार महा हों । वसति भयो मुनि व्यास तहां हों ॥
 एक दिन मेरी जननी ही जो । गाय दुहावन को गमनी सो ॥
 मारग मांहि सर्प एक डम्यो । ता पर तास पाय जा परयो ॥
 परत ही पाय दीन मो माता । काटी तिह अजगर दुखदाता ॥
 तब हों कृपन अनुग्रह जानि । उत्तर दिमा चलो मुख मांनि ॥
 तहां मैं बड़े नगर मुनि देखें । आकर खरक ग्राम पुर पेखें ॥
 और किसानन के जे ग्राम । गिर तट ग्राम लग्ये अभिराम ॥
 वन उपवन फूलन की वारी । हें मुनि लग्यी महा सुखकारी ॥
 बहुत विचित्र धातु करि मंडित । हाथन कर द्रुम साग्या खंडित ॥
 असें बहुत निहारे गिरवर । मंगल जल जुन देखें सरवर ॥
 सुंदर सव्द करै खग जहां । सुंदर भौरा विहरे तहां ॥
 असी सरसी देखत भयो । पुनि इकलो आगे मैं गया ॥
 तब देख्यो एक विपनि भयंकर । कुस वासी वासन करि गह्वर ॥
 उल्लू मार साप घर जामें । सरकंडे छाप पुनि तामें ॥
 तहां मोहि भूख प्यास पुनि लगी । इंद्रि देह सु भ्रम सो पगी ॥
 तब एक नदी मांहि मैं न्हायो । जल अचवन करि भ्रमहि गवायो ॥
 नर करि रहित विपन के भीतर । टिक्यो जाय हों पीपर के तर ॥
 तहां मैं परमात्म को ध्यायो । जैसे हरि भक्तनि नें गायो ॥
 चित्त प्रेम सो जीत सु लीयो । हरिपद कमल ध्यान कों कियो ॥
 जब नैननि ते आसु बहाए । तब हरि हरे हरे हिए आए ॥
 जाके पाछे प्रेम भरा मन । पुनि रोमांच भए मेरे तन ॥
 तब मैं सुख समुद्र में न्हायो । जानौ नहि अपनों न परयो ॥
 फिरी हरि को सरूप सुखकारी । अति अनूप दुख नासक भारी ॥
 देख्यो नाही भयो व्याकुल जब । मन मलीन है उठि ठाढ़ो तब ॥
 फिर देखन की इच्छा करी । मन की लै इकाग्रता धरी ॥

देखन के बहु जतन बनाए । पै हरि मो हिरदै नही आए ॥
 तब मैं होत भए मुनि असें । भूखा आतुर होत है जैसे ॥
 तब हरि निर्जन वन के भीतरि । बोलत भए मधुर बानी करि ॥
 पुनि मेरो भ्रम सबै निवार्यो । बेदहू नेत कहति ताहि हार्यो ॥
 हे बालक या जन्म सु मांही । मोकों लखन जोग्य तू नांही ॥
 जिनके रही मलिनता पूर । तिनको मेरो दरसन दूर ॥
 एक बेर दीनो दरसन जो । तेरी चाह बड़ावन को सो ॥
 जो नर मो दरसन कों भजै । सो नर सबै कामना तजै ॥
 अल्प साधु सेवा तुम करी । ताते दृढ़ मति मों में धरी ॥
 जब यह देह त्याग तुम करिहो । देह पार्षद की तब धरिहो ॥
 मो में लागी बुद्धि तिहारी । सो नही कभू होयगी न्यारी ॥
 सृष्टि हूँ नष्ट भए ते तेरो । ग्यान रहेंगे नुग्रह मेरो ॥
 रूप रहत जो बोलत भए । इतनी कही चुपके है गए ॥
 जो हरि सब बड़न के बड़े । दया पात्र मेरे हिय गढ़े ॥
 मैं मुनि तिनको मस्तक नाथ । करत भयो दंडौत सुनाय ॥
 तब हम लाज तजि दई हे मुनि । पढ़न लगो हरि गुह्य नाम पुनि ॥
 अरु तिनकी लाला सुख करनी । सुमिरन करत फिरयो यह धरनी ॥
 हूँ संतुष्ट चाहे सब त्यागी । मन ते मद मत्सरता भागी ॥
 करत विचार भयो हौ तबै । मेरी मृत्यु आयई कबै ॥
 सब ते हूँ उदास हरि में पुनि । निरमल मन में धर्यो अहो मुनि ॥
 तब ही काल आय गयो असें । फाटक गिर मैं बिजरी जैसे ॥
 जो श्रीहरि नें कही ही मोहि । सुद्ध पारषद करिहो तोहि ॥
 हों पारषद होन लगो जब । पंचभूत वह देह गिर्यो तब ॥
 जिन कर्मन करि रच्यो हुतो मुनि । तिन कर्मन को अंत भयो पुनि ॥
 प्रलै समै त्रिभवन को लै करि । सोबत भए समुद्र मांहि हरि ॥
 तिन संग बिधि सोवन को भयो । ताके सांस संग हो गयो ॥
 सहस चौकरी बीत गई जब । बिधि उठि सृजन लग्यो त्रिभवन तब ॥

मैंरु मरीचादिक रिष जिने । विधि की इंद्री ते भए तिते ॥
 फिरौ त्रिलोकी बाहर भीतर । हरि ने कृपा करी अति ही करि ॥
 अरु यह बीना हरि मोहि दई । सप्त सुरन सो जुत रस मई ॥
 अब हो मूर्ख राग उपजावत । सुंदर कृष्ण कथा को गावत ॥
 विचरति फिरौ त्रिलोकी मांही । मेरी गति कहू खंडित नांही ॥
 जब सुंदर जस तीर्थ पाद करि । सुने चरित्र गाए जो मो करि ॥
 तब मेरे हिय आवत जैसे । सीघ्र बुलायो प्राणी जैसे ॥
 व्याकुल चित्त विषे करि जिनके । भव समुद्र तरबे कों तिनके ॥
 कृष्ण चरित नौका इक आहि । हम हू निश्चै कीनी ताहि ॥
 काम लोभ करि पीड़ित चित्त । श्रीमुकंद सेवा सो मित्त ॥
 तिह छिन सांत होत है जैसे । जम नियमन सों होत न तैसे ॥
 अहो व्यास पूछी जो सो सों । सो निष्पाप कही मैं तो सों ॥
 अरु मैं जन्म कर्म सब कहे । जे तुव तुष्ट हेत क्यों लहे ॥
 सूत उवाचः—

यो श्रीनारद मुनि अकुलाय । कही व्यास जू सो समझाय ॥
 आग्या मांगि बीन टंकारत । चले हिए नही कछु विचारत ॥
 हे सौनक यह नारद धन्न । हरि की कीरति कहत प्रसन्न ॥
 बीन बजावत हरि गुन गावै । आतुर सब जगतहि सु रमावै ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
 षष्ठमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

दोहा—जन्म परीछत कहन को दंड द्रोण कों जानि ।

सूते सुत जा ते हते यह सातएँ बखानि ॥

शौनक उवाचः—

अहो सूत नारद जब गए । तब कहो व्यास करत कहा भए ।

सूत उवाचः—

हे मुनि जहां सरस्वती बहे । तहां व्यास को आश्रम रहे ॥

संन्यास नाम ताको पुनि । वदवति जग्य रिषन को हे मुनि ॥
 पुनि वैरनि के द्रुम छाए जहां । करि आचवन व्यास बैठे तहां ॥
 पुनि एकाग्र चित्त करि लियो । नारद बचन विचारत भयो ॥
 भक्ति जोग करि मन भयो निश्चल । सब मल छार्डि भयो अति उज्जल ॥
 ता मन मैं हरि मूरति देखी । माया ताके आश्रै पेखी ॥
 जा माया को जाब जु पाए । गुननि रहित मोहित हूँ जाए ॥
 तब गुनिमय आपे के मानें । ता करि करता आपहि जानें ॥
 भक्ति अनर्थ सांति को हेत । जे नर जानत नाहि अचंत ॥
 तिनको श्रीभागवत बखान्यो । बेद व्यास भक्ति रस सान्यो ॥
 सुने भागवत को नर नवै । हरि में भक्ति होत है जवै ॥
 सो वह भक्ति मोहि निरवारै । भय सौकन को तुरत बिडारै ॥
 श्रीमुक्ताम साधु अति आहि । करि भागवत पढ़ायो ताहि ॥
 शौनक उवाचः—

आतमाराम चाह सब तजी । पुनि निवृत्ति पदवी को भजी ॥
 तिन मुक यह अति दीर्घ पुरान । कैसे पढ़्यौ सु करो बखान ॥
 सूत उवाचः—

जो निप्रंथि आतमाराम । तेऊ करें भक्ति निष्काम ॥
 ऐसे हरि के गुनि मुनि तिन करि । मत बिद्धिप्र होय श्रीसुक हरि ॥
 यह अति दीर्घ पुरान पढ़्यौ मुनि । हरि जन अति प्यारे जिनको पुनि ॥
 कहों प्रीछत के तुम सों मुनि । जन्म कर्म परलोक प्राप्ति पुनि ॥
 अरु अस्थान पांडवन के जो । कृष्ण कथा सों जुत वरनों सो ॥
 जब कौरव अरु पांडव लरे । गये बीर गति जे जे मरे ॥
 भीम गदा करि दूटि गए तन । तब दुरजोधन गिरत भयो रन ॥
 लखि अस्थामा दुःखित भयौ । ताके मंगल में मन दयौ ॥
 तब सु द्रोपदी के सुत जिते । सूते जाय हते तिन तिते ॥
 देखि द्रोपदी सब सुत मरे । रोई कूक नैन जल भरे ॥
 पुनि ताको तन जरन लग्यौ सब । सांत करन अर्जुन बोल्यो तब ॥
 सुन सुतहीन द्रोपदी नारी । नीच द्विजन में शत्रु सुधारी ॥

जैसे अस्थामा को सिर जो । ल्याऊं कांठि सरनि करिकै सो ॥
 ता पर तोहि चढ़ाय न्हावाऊ । तब तेरे ये अश्रु मिराऊं ॥
 जैसी कहि बानी अभिराम । कीनी सांत द्रौपदी भांम ॥
 बहुर चढ़े रथ ऊपर अरजुन । किये स्वारथी कृष्णचंद्र पुनि ॥
 कवच पहिर लै धनुषहि आछे । दौरयो ता गुर सुत के पाछे ॥
 जिन अस्थामा बालक मारे । दूर तें तिन अर्जुनहि निहारे ॥
 देखत ही द्विज भयो अचेत । प्रानन की रच्छा के हेत ॥
 रथ में चढ़ि भाजत भयो अैसे । शिव के भय ते सूरज जैसे ॥
 पुनि द्विज सुत के बाहन जिते । भाजति तें जु थकित भए तिते ॥
 तब द्विज कोऊ न रछक जानौ । ब्रह्म अस्त्र पुनि रछक मानौ ॥
 रछक जानि आचवन लयौ । ह्वै इकांत सो छोड़त भयौ ॥
 तदिष आहि संहार अजान । तऊ दुःख प्रानन को जान ॥
 ताते तेज प्रगट अति भयो । सब दिस मांहि छाया सो गयो ॥
 प्रान नास को हेत देखि पुनि । बोलत भयो कृष्ण को अर्जुन ॥
 अर्जुन उवाचः—

कृष्ण कृष्ण हे महाभाग सुनि । भक्तन के दुख नासक तुम पुनि ॥
 जो नर अहो जगत में जरे । ताको तुम बिन को उद्धरे ॥
 तुमही आदि पुरुष ईश्वर तुम । पुन माया के परे सदा तुम ॥
 तुम चिच्छक्ति करि माया टारी । सुद्व रूप में थिति सु तिहारी ॥
 माया करि मोहित जिनके मन । तुमरी सेव करें जब तैं जन ॥
 तब तुम अपनेई प्रभाव करि । देत नरन धर्मादिक हे हरि ॥
 तैसे ही यह तुव अवतार । पृथ्वी भार उतारन हार ॥
 पुन अनन्य भक्तनि को ध्यान । पुष्ट करन को प्रगटे आन ॥
 अहो देव यह कहो कहा ते । हों नहीं जानों भयो कहां तें ॥
 अति दारुन सब दिस ते ध्यावै । कहो कृष्ण यह कहां ते आवै ॥
 श्रीकृष्ण उवाचः—
 अहो यह द्रोण के पुत्र चलायो । ब्रह्म अस्त्र तिह तेज सु छायो ॥

दे खैचनि में आहि अजान । जानि प्रान दुख दीनौ तान ॥
 हे अर्जुन यह अस्त्र जु आहि । काटनि जोग अस्त्र नहि याहि ॥
 ताते दीरघ तेज यह अर्जुन । भेदो अपनो अस्त्र तानि पुनि ॥
 सूत उवाचः—

वीरन को मारै जो अर्जुन । जल अचयो श्रीकृष्ण वचन सुनि ॥
 दै परदृष्टना छोड़ो अर्जुन । ब्रह्म अस्त्र का ब्रह्म अस्त्र करि पुनि ॥
 दोऊ तेज परसपर मिलि करि । लीने छाया अकास स्वर्ग धरि ॥
 दोऊ छाया बढ़ति भए अैसे । प्रलै समें रवि अगिन सु जैसे ॥
 दोऊ अस्त्र को तेज सु छयो । तीनो लोक जरावत भयो ॥
 ता करि जरी प्रजा तत्काल । मानति भई प्रलै को काल ॥
 सबै प्रजा का प्रलै सु देखी । मुनि सब लोक नास को पेखी ॥
 पुनि हरिहू को मत पायो जब । दोऊ अस्त्र खैच लीने तब ॥
 लाल नैन अर्जुन के भए । दौरि अस्थामा के टिग गए ॥
 जाय के बांधि लियो द्विज अैसे । पसुहि जेवरनि सों ले जैसे ॥
 अर्जुन निज बल प्रगट सु कियो । वैरी बांध जेवरन लियो ॥
 बांधि लै चलो पूर कां जवै । कुपित होय हरि बाले तवै ॥
 हे अर्जुन यह नीच महा है । बेगि मारि देखी जु कहा है ॥
 निर अपराध बाल है जिते । सूते जाय हते इन तिते ॥
 मत्त बाल सूतो रथ हीन । पुनि सरनागति अरु भय लीना ॥
 तियारु पुनि बावरो जु आहि । मारे नहीं धर्मवित ताहि ॥
 अपने प्रांनहि जो निरदै नर । पौषत प्रान और के ले करि ॥
 ताको नास ताहि सुख करै । ना तां जाय नरक में परै ॥
 अरु जो तें जु तिया सो कही । सोऊ हमनि सुनी सब सही ॥
 हे तिय जिह बालक मारे सब । ताको मूंड काटि ल्याऊं अब ॥
 ताते यह पापी सुत हर्ता । पुनि भर्ता को बिप्रिय कर्ता ॥
 कुलदूसन अरु सस्त्र धारि पुनि । बेग याहि मारै किन अर्जुन ॥
 जैसे धर्म परीछा लैन । अर्जुन प्रेरयो पंकज नैन ॥

तऊ नाहि गुरु के सुत मारे । जदिप सबै पुत्र संहारे ॥
 कृष्णहि मित्र मारथी जा के । सो अर्जुन घर आय तिया के ॥
 अस्थिमहि आगै ले करौ । पुत्र सोक तिय के हिय भरो ॥
 पसु सो बंधो जेवरन आयो । निंद कर्म करि मुख तिन नायो ॥
 असो गुर सुत देखो जबै । मृष्ट मुभाव द्रोपदी तबै ॥
 दोरि जाय पायन में परी । कृपा आय तिय के हिय भरी ॥
 बंधन सहि न सकी बोली तब । छोड़ि छोड़ि अर्जुन याको अब ॥
 मंत्रन जुत है धनुरबेद जो । जास कृपा तें तुम जान्यो सो ॥
 खंचन और छोड़िबो जान्यो । अस्त्र समूह सबै पहिचान्यो ॥
 पुत्र रूप यह द्रान सु बहै । देखि कृपा अर्द्धगो यहै ॥
 पति संग जरी न ताते अर्जुन । बेगि छोड़ि यह द्विज अरु गुरु पुनि ॥
 हे अर्जुन धर्मग्य महावर । गुरुकुल सदा पूज्य है तुम करि ॥
 पुनि तुम करि दंडैतहि जाग्य । दुख पैबे को आहि अजग्य ॥
 हे अर्जुन याकी जननी जो । गौतम वंस भई प्रगट सो ॥
 पतिहि आहि देवता जाके । नैनन ते जल जाहु न ताके ॥
 पुत्रहीन मैं रोऊँ जैसे । पीड़त होहु कृपी जन असैं ॥
 जो नृप इंद्रजीत न लेय । पुनि बिप्रन को पीड़ा दय ॥
 जब सब द्विज पीड़ा कैं पावै । तब नृप कुल को बेगि जरावै ॥
 सूत उवाच—

हे मुनि यह जु द्रोपदी युक्त । धर्म न्याय करुना करि युक्त ॥
 कपटहीन सम भ्रष्ट आहि पुनि । धर्म पुत्र के मन मानी मुनि ॥
 कृष्ण नकुल सहदेव धनंजय । सात्यकि और तीय सब मन दय ॥
 तिया द्रोपदी की बानी सुनि । भलें भले यो कहन लगै पुनि ॥
 भीम क्रोध करि तब सु उचारी । या को बध या ही सुखकारी ॥
 नहि अपने नहि भर्ता अर्थ । सूते पुत्र हते इन व्यर्थ ॥
 भीम द्रोपदी बचन कहे जे । कृष्ण चतुरभुज सुनै सबै ते ॥
 पुनि अर्जुन को बदन निहारौ । हंसि के कछु बचन उचारौ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

अर्जुन नीचह द्विज न मारिए । बेगि मारिए शस्त्र धारिए ॥
 यह दोऊ मम अग्या जाते । दोऊ सांच करे तुम ताते ॥
 अरु जो करी प्रतिग्या आप । सोऊ सांच करो निसपाप ॥
 भीम द्रोपदी को मेरो पुनि । मन मानो करिए हो अर्जुन ॥

सूत उवाच—

अर्जुन हरि के मन की जानि । खड़गह लै द्विज के दिग आनि ॥
 मूंड माहि इक मनि ताके जो । केसन सहित काटि लीनों सो ॥
 हत्या करि सरूप सब गयो । तेज हीन मनि हीनि सु भयो ॥
 तब सब बंधन लिये निवारि । गांव माहि ते दिये निकारि ॥
 सीस मुंढाय लय धन घर ते । अथवा दिए निकास नगर ते ॥
 यही दंड है नीच दुजनि मुनि । दैहिक दंड नाहि ताको पुनि ॥
 सहित द्रोपदी पांडव जिते । पुत्र सोक करि आरत तिते ॥
 मरे बालकनि की कीनी पुनि । जो दाहादि किया ही हे मुनि ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसज्जानि कृते

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय

दोहा—द्रोन अस्त्र ते राखि लिख विघ्नरात भगवान ।
 कुंती अस्तुति धर्म सुत सोक आठवे जान ॥

सूत उवाच—

मरे बालकनि को जल दें । पांडव गंग चले वह नैन ॥
 पुनि आगे कीनी सब नारी । लीने संग कृष्ण सुखकारी ॥
 जाय गंग में जल को दियो । पुनि मिल सबनि बिलाप सु कियो ॥
 हरि पद रज करि सुध जल जामें । नहाए सब मिलि ता गंगा में ॥
 तहां भैयनि के सहित युधिष्ठिर । बैठे गांधारी धृतराष्ट्र ॥
 कुंती और द्रोपदी महान । सुत दुख पीड़ित कहिय कहा ॥
 बंधुहीन भए पीड़ित सबै । मुनिन सहित श्रीकृष्ण सु तबै ॥

भए सबनही को समझावति । काल की दुर्जय चाल दिग्यावति ॥
दुष्टन राज छीन लीनी जो । पुनि युधिष्ठिरहि कृष्ण दियो सों ॥
गहे द्रोपदी के जिन केस । ते सब मारे दुष्ट नरेस ॥
धर्महि जय कराए तीन । जिनमें वस्तु अनंक नवीन ॥
तिन करि जम विस्तार्यो अैसे । वामन नें मधवा को जैसे ॥
लई पांडवनि सों आग्या पुनि । संग लए सात्यकि उद्धव हे मुनि ॥
कृष्ण सबै द्विज पूजे आछे । सबनि कृष्ण पूजै पुनि पाछे ॥
तब श्रीकृष्ण लगे अति भले । रथ में चढ़ि द्वारावनी चले ॥
तभी उत्तरा भय करि छाई । हरि के समुहे दौरी आई ॥
उत्तरा उवाच:-

हे जोगीस देव हे जगपति । मेरी रक्षा करो महीपति ॥
तुम ते निरभै और न कोई । जाते मीच परसपर होई ॥
अहो नाथ एक बान जरावति । मेरे सनमुख दौरो आवति ॥
सो मोहि अहो निसंक जरावो । पै मति मेरो गर्भ सतावो ॥
नीके वचन मुन्यो जदुराई । भक्तनि पर बन्सलता छाई ॥
द्रोन अस्त्र ताको जान्यो हरि । पांडव रहित कियो चाहे धरि ॥
पांच यांन सनमुख आवत पुनि । लखति भये सब पांडव हे मुनि ॥
अति प्रज्वलित अगिन से आए । लखि अप अपने अस्त्र उठाए ॥
मति पांडवयनि कृष्ण मैं धरी । तिनको दुख देख्यो जय हरी ॥
तब निज चक्र मुदरसन ले करि । तिनकी रच्छा करत भए हरि ॥
जो जोगेस बसे जन दिए । सो कुरुवंसी बीज के लिए ॥
गर्भ उत्तरा को हो जोई । चारो धांते घेरयो सोई ॥
ब्रह्म अस्त्र अति सफल सु आहि । कोऊ निवार सकै नही ताहि ॥
सांऊ सांत तुरत हूँ गयो । चक्र को तेज प्रगट जब भयो ॥
हे सौनक हरि आचरज रूप । तिनमें यह आचरज न अनूप ॥
जो हरि अपनी माया धारि । जग रचि पाले करै संहारि ॥
हरि द्वारावति चलन लगै जब । कुंती जाय कही तिन सों तब ॥

लै करि संग बहू बेटे ते । ब्रह्म अस्त्र ते हरि राखे जे ॥
कुंती उवाच:-
हे हरि तुम माया ते दूरि । आदि पुरुष ईश्वर भरपूरि ॥
सब दिये वसों अलख तऊ आहि । मैं यह सीस निवाऊं ताहि ॥
नास रहित तुम ईश्वर हरी । ठकि रहे विव माया चिकपरी ॥
मूढ दृष्टि तोहि लखै न अैसे । नट आचरन अग्य नर जैसे ॥
परमहंस उज्जल चित जिनके । दिय हू मैं नहि आवत तिनके ॥
भक्ति हेत तुम प्रगटे आहि । हम तिय कैसे देखै ताहि ॥
कृष्ण हे वासुदेव जग बंदन । नंद कुमार देवकी नंदन ॥
हे गोविंद कमलदल लोचन । कमल चरन सबके दुख मोचन ॥
कमलनाभ बनमाला धरे । तुमको नमो नमो हम करे ॥
अहो कृष्ण जो तुमरी माता । रोकी ताहि कंस दुख दाता ॥
बहुत काल जब पीड़ा पाई । तब तुम ताका जाय छुटाई ॥
मोहि तो पुत्रनि सहित उयारी । तुरतही विपति अनेक निवारी ॥
विव ते हे हरि तुमनि जिवाए । जत लाख घर माहि बचाए ॥
अहिडिवादि के उदारे । अरु बन क्लेम सबै निवारै ॥
बीच सभा में बसन बढ़ाय । हे हरि तुमही भए सहाय ॥
महारथीन जे अस्त्र चलाए । तिनतें रन में तुमनि बचाए ॥
द्रोन अस्त्र तें रच्छा करी । सब ठौरन ते राखे हरी ॥
ताते कृष्ण विपति है जितनी । होहु निरंतर हमको तितनी ॥
जिन विपतन में तुमरो दरसन । ताते जग को होत अवरसन ॥
धन विद्या एवयें श्रेष्ठ तन । इन करि मत्त भयो हरि जो जन ॥
सो न लै सकै नाम तिहारो । जा ते तू निष्किंचन प्यारो ॥
साधु अकिंचन ही धन जिनके । भई गुन भृत्ति निवृत्ति सु तिनके ॥
आत्माराम मुक्ति पति आहि । मेरे नमस्कार है ताहि ॥
सब ठां सम विचरत हूं प्रभु हरि । सदा सूर्य तुम आदि अंत करि ॥
हम तोहि काल लखति हैं यातें । नरनि में बैर हांत है जातें ॥

हे हरि नर सहस्र धर जोई । करो जानि जन सकै न कोई ॥
 कोऊ न बैरी प्रीये निहारे । तामें विषम बुद्धि नर धारे ॥
 हे विश्वात्म अजन्मा तेरे । जनम अरु कर्म अकरो करे ॥
 पशु नर रिप जल जियनि मंभारी । लखियत सु तो विहंवन भारी ॥
 हरि तुम जब दधि भाजन फोरि । भाजे गह जसोदा दोरि ॥
 पुनि तोहि बांधन रज्जु लइ जब । नीचो मुख करि लीनो तुम तब ॥
 पुनि नैननि में जल भर आयो । तिह दृग जल कज्जलहि बहायो ॥
 भै हू भै पावति है जातें । तिन तुम भै पायो जमुदा तें ॥
 सो तब दसा जवै हिय आवै । हरि तब मोहि मोह उपजावै ॥
 कोई कहै धर्म पुत्र जस कारन । जन्म अजन्मा कीनो धारन ॥
 जदु के बंस मांहि लै असैं । मलियाचल में चंदन जैसैं ॥
 जब वसुदेव देवकी बरे । काई कहै तब सु आय अवतरे ॥
 या जग के सुख को विस्तारन । और सबै असुरन को मारन ॥
 कोई कहें धरनि भार जब भरी । तब विधि जाय प्राथना करी ॥
 तब धर भार हरन प्रगटे यो । वारिधि बृद्धति को नवका ज्यो ॥
 कोई कहै या जग में पीड़ित नर । निठुर आबिद्या काम कर्म करि ॥
 ता को सुमरन श्रवन जोग्य जो । कर्म करन को हरि प्रगटे यो ॥
 तेरे सुंदर चरित जिते हरि । सुमिरै सुनै बखानै जो नर ॥
 श्लाघा करै निरंतर गावै । सो भव नासक तुव पद पावै ॥
 हे प्रभु भक्तनि हेत करो सब । हमरे जीवनि मित्त तुम्ही अब ॥
 सब नृप हमसों बैर कराही । तुम विन हमरे कछु हूँ नाही ॥
 हम जानें पद कमल तिहारे । तिनै छोड़ि कहां जैहो प्यारे ॥
 हे हरि तुव दरसन विन जादौ । नाम रूप करि सबही पांडौ ॥
 सुन हे कृष्ण होत है असैं । जीव विना सब इंद्री जैसैं ॥
 तुव पद सुंदर चिन्हनि करि हरि । जैसैं अब सोहत है यह धर ॥
 तैसैं हे हरि तुम जैहो जब । सोभत नाहि होयगी यह तब ॥
 संपतिजुत जे नगर मुरारी । पके अन्न आदिक जहां भारी ॥

वन गिरि नदी समुद्र हैं जिते । तुव दरसन ते बढ़ति हैं तिते ॥
 हे विमवेस विश्व मूरति हरि । विश्वात्म मो बात न्यन धरि ॥
 जादव अरु पांडवनि मांहि जो । स्नेह पामि किन काटि लेहु सो ॥
 हे जटुपति सुंदर मुखकारी । तुमही में मनि लगे हमारी ॥
 तुममें प्रेम बहो सो असैं । गंगा औध समुद्र में जैसे ॥
 हे गोविंद कृष्ण जादवपति । हे अर्जुन के मीत प्रीय अति ॥
 दुःख हरन द्विज गाय मुरन को । प्रगट भए धरि रूप नरन को ॥
 प्रथवी के द्रोहिन को कुल सब । जारनि को तुव अगिन रूप अब ॥
 हे जोगस सदा बलवान । सबके गुरु तुमही भगवान ॥
 भक्तन के दुख नासक सुख करि । तुमको नमो नमो हमरे हरि ॥
 मृत उवाचः—

बहु मदिमा हरि की अस्तुति जो । अद्भुत भांति करी कुंती सो ॥
 निज माया करि मोहित से पुनि । हमे नंद हरि तिह अस्तुति मुनि ॥
 कुंती की हरि बानी मानी । चलन द्वारका को मन ठानी ॥
 कुंती मुख्य जितनी ही नारी । तिन सो आज्ञा मांगि मुरारी ॥
 चलन द्वारका को लागे जब । प्रेम सो धर्म पुत्र राखे तब ॥
 बहु सोक करि दुखित भूप पुनि । ताको सब ही व्यामादिक मुनि ॥
 हरि की इच्छा मांहि अज्ञान । समझाय बहु बचन बखान ॥
 अद्भुत करमा हरि हैं हे मुनि । समझये पै नही समझे पुनि ॥
 तब सु युधिष्ठिर भये उचारत । सुहृदन को बध दिये विचारत ॥
 चित अविबेरी करि दुख भयो । स्नेह सो मांह के बस हूँ भयो ॥
 अहो देवो मेरो अग्यान । जा सरीर को खैहै स्वान ॥
 ता हित दुष्ट वित्त मैं मारे । बहुतक अति प्यारे ते प्यारे ॥
 मित्र पिता द्विज बालक भ्रात । इनको मैं बैरी विख्यात ॥
 मैं तो बरष हजारन मांही । नरकन ते छूटोगो नांही ॥
 भूपहि धर्म जुद्ध के मांही । बैरिन को बध पाय सु नांही ॥
 अहो यह सिन्धु बचन तिहारो । मोहि न ग्यान करावन हारो ॥

बंधुहीन इन्धिन को द्रोहि । अहो द्विज अथ अथ लाग्यो है मोहि ॥
ताहि प्रह आश्रम के जु कर्म करि । दूर करन को जोग्य न मुनि बरा ॥
जैसे कीचहि कीच लाय मुनि । धोय नेकु न सुद्ध होय पुनि ॥
पुनि जो मदिरा भोजन जोई । मदिरा माजै सुद्ध न होई ॥
अैसे मख में बहु हत्या करि । नर की इक हत्या न जाय तरि ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

दोहा—कृष्णहि स्तुति करि भीष्म जू, राजहि धर्म बग्यानि ।
आप प्राप्त ह्वै है हरिहि, नव अध्याय यह जानि ॥
प्रजा द्रोह ते डरयो राजा । सर्व धर्म जानन के काजा ॥
बेगि गए कुरुक्षेत्र सु नामै । जहां भीष्म जू सर सज्या में ॥
पुनि राजा के भ्राता जिते । पाछे चले रथहि चढ़ि तिते ॥
जिनके सुंदर छोरा लगें । स्वर्न आभरन करि जगमगें ॥
चले व्यास धोमादिक जे मुनि । रथ चढ़ि कृष्ण धनंजय हूँ पुनि ॥
इन करि धर्मपुत्र सोई यों । जछनि के मांही कुबेर ज्यों ॥
भीष्म भूमि में परै सु अैसे । स्वर्ग ते पर्यो देवता जैसे ॥
कृष्ण सहित पांडव जे गए । लखि भीष्महि सिर नाचत भए ॥
औरो भीष्महि देखन हेत । बहुत ब्रह्मरिख गए कुरुक्षेत्र ॥
अरु देवरिख राजरिख धाए । पबेत धौम्यरु नारद आए ॥
भरद्वाज बृहदस्व व्यास मुनि । परसराम सिष्यनि समेत पुनि ॥
इंद्रप्रमद वसिष्ठ गौतम त्रित । कछीबान गृहस्मदासित ॥
विश्वामित्र सुदर्शन सुक मुनि । सिष्यनि जुत आए कस्यप मुनि ॥
और बृहस्पति आदिक जिते । महाभाग मिल आए तिते ॥
देखि सबै पूजै धर्मग्य । भीष्म देस काल में बिग्य ॥
कृष्ण कृपा करि मूरत धारी । जगत ईस बैठे सुखकारी ॥
भीष्म हरि प्रभाव को जानि । हिए माहि पूजे भगवान ॥

पांडव पुत्र दिग बैठै आनि । विनै प्रेम करि भीजे जानि ॥
प्रेम अश्रु भीष्म के आए । वचन पांडवन को सु मुनाए ॥
अहो पांडव क्लेसन मांही । जीव को तुम जोग्य हो नाही ॥
द्विज अरु धर्म आसरो जिनको । अति अन्याय क्लेस है तिनको ॥
महारथी जब पांडु पधारें । तब कुंती बहु क्लेस सहारें ॥
हे पांडव इक तुमरे हेत । तुम जब बालक और अचेत ॥
हं पांडव तुमको है दुख जो । काल कियो मैं मानत हों सो ॥
जास काल के बस त्रिभवन यो । पवनाधीन मेघ के गन जो ॥
जहां गांडीव धरैया अर्जुन । धर्म पुत्र सो राजा है पुनि ॥
गदा पांनि जहां भीम बिराजै । कृष्ण मित्र तहां विपता छाजै ॥
हे नृप यह हरि की इछा जो । कोऊ जन नहि जानि सकें सो ॥
जे कवि जाननि इछा करै । ते तो महा मोह में परै ॥
हे नृप यह जग हरि आधीन । तुमहूँ निश्चै करो प्रवीन ॥
निश्चै करि हरि को अनुसरौ । प्रजा अनाथहि पालन करौ ॥
ये साक्षात कृष्ण भगवान । आदि पुरुष नारायण जानि ॥
माया करि मोहित जग भारो । दुरि विचरति जादवनि मंभारी ॥
इनको जो प्रभाव ताको पुनि । जानति कपिलदेव नारद मुनि ॥
पुनि संकर नारायण जानति । ताको तुम माया सुत मानति ॥
मंत्री मित्र दूत करि बरे । स्नेह सो बहुर सारथी करे ॥
ये निरदूषित निरहंकार । सर्वात्म समद्रिष्टि मुरारि ॥
तुमरे घटि बढि कर्मन मांही । इनकी विषम बुद्धि है नाही ॥
हे नृप कहा कहौ मैं इनकी । भक्तन मैं कृपालता जिनकी ॥
देखो अब मैं छोड़त प्राण । ताको दरसन दीनो आनि ॥
हे नृप जो जन भक्तिहि करै । मन ले कै श्रीहरि में धरै ॥
तन छोड़े श्रीहरि गुन गाय । सो सब कर्मन ते छुट जाय ॥
सोई ये देव देव भगवान । अरुन नैन आनंद मुसिकान ॥
अमल कमल मुख अलख बिराजै । सुंदर चार भुजा छवि छाजै ॥

जो ली मैं तन त्यागो अहो। तो ली मेरे आगे रहो ॥
सूत उवाचः—

सर सज्या में सैन है जिनकी। धर्म पुत्र मुनि बानी तिनकी ॥
मुनि रिपिन के धर्म पुत्र पुनि। दहुन धर्म पूछे ये हो मुनि ॥
नर के जो मोभाविक धर्म। दान धर्म राजन के कर्म ॥
बहुर निवृत्ति प्रवृत्ति सु धर्म। मोच्छ धर्म इस्त्रिन के धर्म ॥
बहुरो भगवत धर्म अहो मुनि। वनाश्रम के धर्म जिन पुनि ॥
धर्म अर्थ अरु काम मोच्छ जे। करि विस्तार सुगम वरने ते ॥
जुत उपाय प्रथनि में जैसे। तत्तवेता भीषम कहै तैमें ॥
भीच करी निज वस में जाने। पुनि सब धर्म बग्वाने ताने ॥
काल उत्तरायन ताहि आयो। जो सब जोगन के मन भायो ॥
तब भीषम चुप को हूँ गयो। सब ने मन छुटाय पुनि लयो ॥
कृष्ण चतुरभुज आदि पुरुष जो। पीतांबर ओढ़े ठाढ़े सो ॥
तितमें भीषम मन ले धरो। खुले नैन सर सज्या परो ॥
सुद्ध ध्यान करि गए अमंगल। पुनि सब इंद्रो भई अचंचल ॥
कृष्ण दरस तै विथा सु टरी। तन छोड़ति हरि अमृति करी ॥
भीषम उवाचः—

सब ते श्रेष्ठ जादबनि में सों। मगन सरूपा नंद मांहि सों ॥
कभू विहार करन के हेत। माया को आश्रै सों लेत ॥
जाते होत जगत अभिराम। तामें अरपो मति निसकाम ॥
त्रिभवन में जो सुंदर महा। स्याम सरूप सु कहिए कहां ॥
संदुर पीत वसन अंग धारै। रवि किरननि की छवि हि निहारै ॥
वदन कमल में बहु छवि छाजै। तहां घुंघराती अलक विराजै ॥
ता अर्जुन के मात मंझारी। निसकाम रति होहु हमारी ॥
जुद्ध माहि घोरन की रज रचि। मंद मंद हालत जिनके कच ॥
श्रम के जल कन करि मुख सोढ़ै। मेरे सरन दुखी मन मोढ़ै ॥
सरनि जटित कटि कबच जास तन। ता हरि मैं नित रहें मार मन ॥

जो हरि अर्जुन की सुनि बानी। सैन अपनी और बिगानी ॥
दुहुवनि माहि हांकि रथ राख्यो। यह वह यह वह पुनि यो भायौ ॥
ता करि सबही आयु निवेरी। पारथ सज्या में रति होहु मेरी ॥
अर्जुन सैन मांहि निहारे। द्रोणाचार्य आदि अनि प्यारे ॥
तिनको बध लगि पाप उचारी। मैं नहीं लरिहो अहो मुरारी ॥
तब हरि ताको जो अभ्यान। हरि लीनो गीता सु बग्वानि ॥
ता हरि के चरननि में अहो। मेरी मति सुनिरंतर रहो ॥
अपनी छाड़ि प्रतिग्या हरी। मेरी बानी सांची करी ॥
रथ न कूदि चक्र करि मैं लय। प्रग्वी हूँ को उपजावत भय ॥
मोहि मारिबे को आयो यों। सिंह गजहि मारन धावै ज्यों ॥
दौरत मांहि पीत पट परो। ताहू को संभ्रम नहि करो ॥
मेरे नीछन सर जाकें लगि। रह्यो रुधिर सां देह सबै पांग ॥
कबच के टुक टुक हूँ गए। तब मोहि मारन सनमुख भए ॥
सोई कृष्ण मुकंद मुरारी। अहो होय गति सदा हमारी ॥
अर्जुन को रथ कुटंब है जा के। बेतरु बागडोर कर ता के ॥
वृत्ति स्वारथी की करि महा। सोभित भए सु कहिए कहा ॥
इनको देखि मेरे रन में जे। इनके रूपहि प्राप्त भए ते ॥
ता हरि में रति होहु हमारी। प्रांन छोड़िबे की मन धारी ॥
जा हरि को सुंदर जो हांस। मधुर चाल मैं महा विलास ॥
प्रीति सहित अवलोकन करी। तामा बृज नित्य आदर भरी ॥
प्रेम सो होय बावरी पाछे। कियो कृष्ण अनुकरनहि आछे ॥
तब सब पावति भई विहारी। ता हरि मैं रति होहु हमारी ॥
राजसूय मग्य कियो युधिष्ठिर। तामें मुनि गन बहु राजा बर ॥
तिनके पहल कृष्ण सुखकारी। पावत भए सू पूजा भारी ॥
पुनि सबके आत्मा जो अहो। सो मेरे नैनन दिंग रहो ॥
जो श्रीकृष्ण अजनमा गए। सब तन धारी आप बनाए ॥
सब के हिये एक राजै यों। सबके द्विगन मांहि इकरवि जो ॥

भेद मोह मेरो अब गयो । उही कृष्ण को प्राप्ति भयो ॥

सूत उवाच—

मन बानी नैनन की धृति । कृष्ण मांदि ही करी प्रवृत्ति ॥
स्वांसनि खैचि भीतरे लये । पुनि तन में न्यारे हूँ गये ॥
सुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति भई । सब जन अैसे जानि मु लई ॥
तनक हूँ गए चुपके अैसे । मध्या समे पखेरूँ जैसे ॥
तब नर और देवता जिते । वज्रवति भए नगारे तिते ॥
देवनि पुष्प वृष्टि बरपाई । साधन पुनि पुनि करी बड़ाई ॥
भीष्म परलोकहि गमने जब । धर्म पुत्र दाह आदि कियो तब ॥
औरो क्रिया करी सब हे मुनि । द्वै घटका बहु मोक कियो पुनि ॥
बहुरी गुह्य नामनि करि भीनी । हरिषि मुनिन हरि अस्तुति कोनी ॥
कृष्ण ही सबन हिये धरि लए । पुनि अप अपने घर को गए ॥
धर्म पुत्र संग लए मुरारी । आय हस्तीना नगर मभारी ॥
गांधारी धृतराष्ट्र छए दुख । नृपतिन को समभाय दियो सुख ॥
धृतराष्ट्र की आग्या पाय । पुनि श्रीकृष्ण कही समभाय ॥
जब अपने पुरुषनि को राज । धर्म सहित नृप कियो विराज ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृतं

नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दशम अध्याय

दोहा—नृप कारज करि द्वारका, जैहैं श्रीभगवान ।

पुर तिय अस्तुति करैगी, दसै अध्याय यह जानि ॥

सौनक उवाच—

धर्म पुत्र धर्मग्य जु आहि । पुनि सब भोग प्राप्त भए ताहि ॥
वैरी सत्र धरैया जिते । अहो धर्म सुत हरि के तिते ॥
भैयनि सहित राज कियो कैसें । अरु कहो करत भए जो जैसे ॥

सूत उवाच—

बंस रूप बन आग लगी जब । ता करि कौरव बंस जरयौ सब ॥

ताहि अंकुरित कियो मुरारी । जो जग के पालन सुखकारी ॥
राज्य धर्म पुत्रहि बैठायो । जो सब पुरुषन सो चलि आयो ॥
भीष्म कृष्ण के बचन सुने जब । धर्म पुत्र के ग्यान भयो तब ॥
पुनि अग्यान सबै मिट गयो । हरि को एक आमरो लयो ॥
सब भैया अनुवर्त्ती ताहि । पृथ्वी समुद्रांत जो आहि ॥
ताकी रक्षा करत भयो यों । इंद्र सरन गहि वामन की ज्यों ॥
तब सु कृष्ण सुंदर सुखकारी । मन में भए प्रसन्न सु भारी ॥
राजा धर्म पुत्र भए जबै । मन मानी वरषा भई तबै ॥
धर ने चाह पूर्ण करि दई । आनंदित हूँ गैयां भई ॥
अत्र समुद्र नदी गिर हे मुनि । छोटे बड़े बृद्ध जितने पुनि ॥
मन बांछित फल देत भए सब । और प्रभाव एक बरनो अब ॥
मन तन की पीड़ा नहि जहां । तीनों क्लेश भाजि गए तहां ॥
कल्लुक महीनां सुंदर स्याम । बसे हस्तनापुर अभिराम ॥
सुहृदनि को सब सोक निवारन । बहन सुभद्राहि सुख विस्तारन ॥
हरि सब सो आग्या मांगी फिर । कोऊ मिल्यो किनहू नायो सिर ॥
मिले धर्मसुत को सिरनाय । रथ चढ़ि चले पुरहि जदुराय ॥
गांधारी कुंतीरु सुभद्रा । सत्यवती द्रोपदी उत्तरा ॥
धृतराष्ट्र जुत्स गौतमवर । धौम्य नकुल सहदेव वृकोदर ॥
कृष्ण विरह सह सकें न कोऊ । महामूढ़ मोहित भयो सोऊ ॥
करै साधु हरि जस की धुनि । एक बार हूँ नर जो सुनि ॥
तास कुसंग सबै छुटि जाहि । साधु विरह सह सकें सु नाहि ॥
बैठन भोजन सोवन दरसन । मिलि बतरान बहुरि मुनि प्रसन ॥
हरि सों पांडव बरते अैसे । ते कहो विरह संहारे कैसें ॥
चित्त पांडवनि के हरि संग । बंधे सनेह सो द्रग भय पंग ॥
श्रीकृष्णहि देखन के हेत । लाय लाय सब भेटन देत ॥
पुर ते बाहर निकसे हरि जब । सुहृदनि की तिय निकल भई तब ॥
रोकि लिये दृग आंसू याते । पियहि न होय अमंगल जाते ॥

नौवत संख मृदंगन संघा । भेरी बीन दुंदभी घंटा ॥
 ढोल ढोलकी और नगारे । बाजति भए तिहीं छिन सारे ॥
 और कौरवनि की तिय जिती । देखन चढ़ी मुमहलन तिनी ॥
 सलज प्रेम सो पियहि निहारें । बहुरो ऊपर फूलनि डारे ॥
 मोतिन की माला है जाके । रतननि जटित दंड है नाके ॥
 औसो स्वेत छत्र एक आहि । कृष्ण मित्र अर्जुन लयो ताहि ॥
 दोय चवर सोभा सां छये । उद्वव सात्यकि इनते लये ॥
 तब सो कृष्ण बहु सोभा पाई । ऊपर पुष्प वृष्टि पुनि छाई ॥
 पुनि श्रीकृष्ण जात हैं ज जहां जहां । सत्य असीस देत द्विज तहां तहां ॥
 निरगुन को ते आहि अजोग । सगुन कृष्ण को सब ही जोग ॥
 और कौरवनि की जे नारी । जिनके मन हरि लिये मुरारी ॥
 तें सब मिल संवादहि करै । जे संवाद बेद मन हरै ॥
 हे सखी आदि पुरुष भगवान । प्रलै प्राप्त होय जब आनि ॥
 तब सब अप सरूप में यिति करि । रहत एकही जो ईश्वर हरि ॥
 पुनि सब जीव भरे गुन तीन । ता ईश्वर में होत सु लीन ॥
 तबहू रहे एक जो ईस । सोई ये कृष्णचंद्र जगदीस ॥
 सिरजन की इच्छा है जाहि । जगत मोहनी प्रेरी ताहि ॥
 ता मायहि अनुसरै सोई हरि । रहित जीव जे नाम रूप करि ॥
 तिनके नामरूप बनावति । सत्त्व बनाय कर्म करावति ॥
 इंद्रि पवन जोत जिन लई । निरमल बुद्ध भक्ति करि भई ॥
 कृष्ण चरन को देखति ते नर । बुद्धि सुद्धि करन वेई हरि ॥
 हे सखी इनकी कथा सुहाई । गुह्य श्रुतिन में कविन सु गाई ॥
 त्रिभुवन को अपनी माया करि । रचि पालै संहारै जो हरि ॥
 पुनि तिन में आसक्त न होई । हे सखी ये श्रीकृष्ण हैं सोई ॥
 तमोगुनी जब होय नृपतिवर । पुनि जीवै बहुतें अधर्म करि ॥
 तब जुग जुग में सत्य मूर्ति हरि । जग के मंगल को प्रगटै धरि ॥
 थापे दया सत्य सुभ बानी । पुनि जग ईश्वर जहां सुखदानी ॥

गलाघा जोगि आहि जदुकुल अति । जामें जन्म लियो है श्रीपति ॥
 अति पवित्र यह मथुरा याते । उत्तम हरि बिहार कियो जाते ॥
 अहो स्वर्ग जस नाम सु करै । पृथ्वी जसहि द्वारका धरै ॥
 जहां सब औसैं हरिहि निहारें । हसि अवलोक अनुग्रह टारे ॥
 हे सखी इनकी पतिनी जिती । नीके हरि पूजत भई तिती ॥
 कीन्हे व्रत अस्नान होम सब । जाते अथरामृत पीवन अब ॥
 जा अथरामृत सो सब वृजतिय । मोहि गई जिनके हरि में हिय ॥
 पुनि यह गए स्वयंवर में जब । जीत मत्त सिमपालादिक सब ॥
 तहां ते बहु नारी मुकुमारी । लाए ये श्रीकृष्ण मुरारी ॥
 मुत जु सांव प्रद्युम्न हैं जिनके । बलही आहि मोल पुनि तिनके ॥
 पुनि हरि भौमासुर को मारि । लाए नारी कैऊ हजार ॥
 पराधीनता सौच न आहि । औसी इम्त्री जो निज ताहि ॥
 करत भई ये तिय अति सोहन । जिनके कमलनैन मन मोहन ॥
 सुंदर बानी कहि सुख देत । जिनके कभू न तजे निकेत ॥
 औसे जे जे पुर की नारी । सुंदर बानी भापन हारी ॥
 हमि के तिन सतकार ही करि । जात भय श्रीकृष्णचंद्र हरि ॥
 स्नेह ते धर्म पुत्र ने घनी । हय गय रथ प्यादन की सनी ॥
 सैना हरि के संग पठाई । बैरिन ते संका नृप पाई ॥
 कौरव कृष्ण विरह सो तये । बहुत दूर लों संग सु गये ॥
 तिनहि निवारि पुरी हरि आए । संग उद्वववादिक जे गाए ॥
 कुरुक्षेत्र कुरुजंगल देस । सूर सैन पंजाब सुदेस ॥
 ब्रह्मावर्त जमुन तट देस । मत्स्यदेस अरु मारुदेस ॥
 सरस्वती तट देस अहो मुनि । अल्पोदिक सोबीर देस पुनि ॥
 लांघे सब आभीर सु देस । पहुँचे जाइ द्वारिका देस ॥
 नेकु कृष्ण के घोरा हारे । हे सौनक मुनि हरि के प्यारे ॥
 अहां श्रीकृष्ण जाय पुन जहां जहां । पूजन करत प्रजा सब तहां तहां ॥
 अस्त होन लाग्यो सूरज जब । गये पछम दिस सांभ समे तब ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भावा रसजानि कृते
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय

दोहा—बंधुन की स्तुति सुनत, कृष्ण द्वारका आय ।
जो विहार कीनो सोई, कहत ग्यारहें अध्याय ॥

सूत उवाचः—

देस द्वारका संपति छाप । सुंदर कृष्णचंद्र तहां आए ॥
आय आपनो संख बजायो । ता करि सब के दुखहि मिरायो ॥
सो वह उज्जल संख रसाल । अधरन की लोला करि लाल ॥
हरि करि कमलन में बाजे यों । कंजन में राज हंस गाजे यों ॥
जग के भय हू को भयकारी । मुनि के संख सन्द सुखकारी ॥
सबै प्रजा हरि सनमुख आई । दरस लालसा मन में छाई ॥
कृष्ण आत्माराम जु आहि । पूर्ण सारुपा नंद करि ताहि ॥
प्रजा करत भई भेटहि जैसे । रवि की भेंट दीपक हि जैसे ॥
सब के फूले बदन प्रीति भरि । गदगद बानी भई प्राति करि ॥
सुहृद कृष्ण सो बोलें जैसे । घालक अपने पित सो जैसे ॥
अहो नाथ पदकमल तिहारे । नमस्कार है तिन हमारे ॥
जिनको बंदित विधि नार्द मुनि । सुख इच्छुकनि सरन तेई पुनि ॥
ब्रह्मादिकनि दंड जो धरे । सोऊ तहां काल प्रभाव न करे ॥
हे हरि तुमरी सेवा करि अब । कृत्य कृत्य हम होय चुके सब ॥
मात पिता पति तुम्ही हमारे । परम पूज्य पुनि गुरु अरु प्यारे ॥
ताते जग रक्षक सु मुरारी । हमको हाहु सदा सुखकारी ॥
जामें प्रेम सहित सुसिकान । चितवन मांहि न्ह सरमान ॥
असो तुमरो मुख छवि पूरि । जाके दरस सुरन को दूरि ॥
ताको हम देखनि हैं अबै । हे हरि भए सनाथ सु सबै ॥
हे हरि तुम सुहृदनि देखनि जब । गए हस्तनापुर मथुरा तब ॥
इक छिन कोट बरष सम भई । कमल नैन तुम में मति छई ॥

बहुर अंधेर होय गयो जैसे । रवि विन होय त्रिगन को जैसे ॥
मुनि प्रजानि के बचन मुरारी । भक्तन पर दम्सलता भारी ॥
चित्त अनुपद कीनो सब पर । आए पुरी द्वारका श्रीहरि ॥
बृष्णि दसाह अहं मधु भोज । कुकुरांधक हरि की तुल ओज ॥
इन करि रवि द्वारका जैसे । भोगवती नागन करि जैसे ॥
सब रितु मैं द्रुम फूलै जहां । छाप लतनि के मंडप तहां ॥
वन उपवन क्रीड़ा गृह सोहै । कमलनि जुत सरोवरी मोहै ॥
उत्सव करि बहु बंदनवार । बांधी दरवाजनि अरु द्वार ॥
सुंदर धुजा पताका सोहै । तिन करि भई छाया मन मोहै ॥
हाट चौतरा गली गल्यारे । आछी विधि सो सबै वृहारे ॥
फल अरु फूल अंकुरिन अछित । जल गुगुंथ भए राखे जित तित ॥
घर के द्वार द्वार जल भरे । स्वर्न के कुंभ मनोहरि धरे ॥
अछित फल दधि ईस्य सुधरी । धूप दीप पूजा विधि करी ॥
प्यारे कृष्ण मुने आवति जय । अति प्रसन्न बसुदेव भए तब ॥
उप्रसैन भीवलि धल पर । चारुदेसन प्रदुम्न अक्रूर ॥
सांबहू जांबवती को तात । हरि आय मुनि फूले गात ॥
आसन असन सैन सब भूले । आगे कीने गज मद भूले ॥
उत्तम द्विज वर संग लिए पुनि । तुरही संखन की छाई धुनि ॥
है सब मुदित रथन चढ़ि लए । सनेह सो महा बिकलता छए ॥
हरि के सनमुख सब ही आय । वेद मंत्र सब ओरनि छाय ॥
बारमुखी बहु सोभा छाई । परी कपोलनि कुदल छाई ॥
तेऊ संग ले लै असवारी । हरि दरसन को आई सारी ॥
नट गंधर्व गवइया धाय । मागध सूत बंदी जन आय ॥
ते हरि के चरित्र सुखकारी । गावत भए मनोहरि भारी ॥
तहां अहो पुरवासी जिते । सेवक अरु बांधव पुनि किते ॥
सभी सो मिलत भए भगवान । जथा जोग कीनो सनमान ॥
काहु को हरि सीस निवायौ । काह के ले हाथ गहायो ॥

काहू कों बानी करि नये । काहू सो पुनि लपटति भये ॥
 काहू को हंसि के मुख दीनो । बानी करि कोऊ निरभै कीनो ॥
 काहू को दीनो बांछित बर । सुपच आदि यो सनमाने हरि ॥
 पुनि गुरु असत्रिन सहित द्विजन की । बंदी जन अरु वृद्ध जनन की ॥
 सब की ले आसीस मुरारी । जाते भए पुर में सुखकारी ॥
 हे सौनक जब हरि सुख पाय । राजमार्ग में निकसै जाय ॥
 तब कुल तिय दर्सन दुख मारी । दौरि दौरि चढ़ि गई अटारी ॥
 सोभानिध श्रीकृष्ण मुरारी । तिनैं द्वारका के नर नारी ॥
 जहिप सदा निहारौ करै । तऊ नैन प्यासेई मरै ॥
 लछमी जिनके उर में राजति । लोकपाल सब भुजन विराजति ॥
 छवि अमृत सो भरौ घदन जो । नैननि को है पान पात्र सो ॥
 इनके चरन कमल रसधाम । मधुकरि साधन को विसराम ॥
 हरि के ऊपर छत्र विराजै । दोऊ ओर चवरन छवि छाजै ॥
 पीतांबर वनमाल धरे । ऊपर कुसमनि धारा परे ॥
 तब श्रीकृष्ण भए सोभित थों । रवि ससि जुत तारे धन धन जों ॥
 कृष्णचंद्र महलनि में जाय । मिलति भए मातनि सुख पाय ॥
 देवकी आदि सात माता पुनि । तिनको सीस निवायो हे मुनि ॥
 तब हरि सबन गोद बैठाय । नैनन के जल सों अन्हवाय ॥
 सनेह सो कुच बहु दूधहि अये । हरिपि सो मन बिहल हूँ गये ॥
 पुनि हरि गए आपने धाम । उत्तम सब निरवारे काम ॥
 सोरह सहस एक सो आठ । जहां पतनी महलन के ठाठ ॥
 है विदेस हरि घर में आए । पतिन देखि बहुत सुख पाए ॥
 नैनन बदन पुनि लजित भए । और छोड़ सवरे व्रत दए ॥
 तिह छिन सब हरि सनमुख आईं । चित्त वृत्ति हूँ सनमुख धाईं ॥
 हे सौनक हरि कों तिय जिती । पहिले मिली बुद्धि सो तिती ॥
 फेरि मिली नैनन सों जाय । महा गूढ़ जिनको भिप्राय ॥
 जहिप नैन जल रोकिहू लयो । तऊ बिकलता करि सों भयो ॥

जदिप कृष्ण एकातिहि पाय । रहे तियनि के दिग निज जाय ॥
 तऊ कृष्ण के चरन रंगीन । छिन छिन माहि जु लगै नवीना ॥
 असो को जु पगनि ते भजें । चंचल लक्ष्मी हूँ नही तजै ॥
 भार रूप जे राजा धर पर । जिनको तेज बढ़यो सेना करि ॥
 तिनैं परस्पर बैर कराय । विन आयुध सब दिए गिराय ॥
 जैसे पवन आग उपजाय । सब बांसन को देन जराय ॥
 सो हरि अपनी माया करि कै । प्रगटे नर सरूप को धरि कै ॥
 ललित तियन सों बिहरे असैं । मायिक जन कोऊ बिहरे जैसैं ॥
 जिनके उज्जल सुंदर हांस । बड़ नाव को करै प्रकास ॥
 जिनकी लजित अवलोकनि करि । मोहित होय धनुष डारो हरि ॥
 ते उत्तम तिय कपटन को करि । कर न सकी वसु सुंदर श्रीहरि ॥
 जैसे कृष्ण असंगी आदि । लखै अबुद्धि संगी ताहि ॥
 अपनी सम मानुष करि माने । पुनि हरि को बिपई करि जाने ॥
 हरि को यह ऐश्वर्य कहावै । रहि तन तन के दुख नही पावै ॥
 जैसे बुद्ध हरि आभै रहै । हरि के गुन को नेकु न गहै ॥
 कृष्ण सदा जिनके दिग रहै । ते तिय हरि महिमा नही चहै ॥
 मूर्खान हरि बस माने असैं । नर अहंकारी जीवहि जैसैं ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानिकृते

एकदशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय

दोहा—अस्थामहि दंडादि सब, पाय प्रसंग बखान ।

जन्म परीछत भूप को, ध्याय बारहे जानि ॥

सौनक उवाच:-

अस्थामा ब्रह्मस्त्र चलायो । ताको तेज बहुत तुम गायो ॥
 तानें हत्यौ उत्तरा गर्भहि । श्री हरि जू राख्यो ता अर्भहि ॥
 सो नृप अति उदार बुद्धिमान । ताके जन्मरु कर्म महान ॥
 तिन तन छोड़ि हरि हि पाये ज्यों । अहो सूत हम सो कहिए त्यों ॥

ताहि ग्यान मुकुमुनि ने दयो । ताको जस सुनबे मन भयो ॥
भद्रा जुत जो हमको जानों । अहो सूत तो हमें बखानों ॥
सूत उवाच—

कृष्ण चरन सेवा ही सो जव । धर्म पुत्र की चाह गई सब ॥
मुख दे प्रजा सु पाली असैं । पिता पुत्र को पालै जेमें ॥
विभो दीप जंबू को पायो । स्वर्ग लोक लो जस पुनि दायो ॥
धन धरनी रानी अरु भैया । जग्य लोक जे मोद दिवैया ॥
भोग देवन को दुर्लभ जे । भए धर्म सुत को सुलभ ते ॥
धर्म पुत्र हरि में मन लायो । ताते किनहु न मुख उपजायो ॥
जैसे मरत भूख को मार्यो । माला चंदन ताहि न प्यारो ॥
ब्रह्म अस्त्र सों जरन लगे जव । हे मुनि नृपति परीछत जूं तब ॥
निज माता के गर्भ मझारी । लख्यो एक जन सुंदर भारो ॥
निरमल औ अंगुष्ठ प्रमान । ललित स्वर्न के कुंडल कान ॥
ललित स्वर्न को मुकुट विराजै । सोभन स्याम वरन छवि छाजै ॥
विजरी सम पीतांबर सोहत । सुंदर चार भुजा मन मोहत ॥
लाल नैन करि गदा लिये पुनि । चारो ओर फिरै ये हो मुनि ॥
जरत दंड सम गदा जु धरै । चारो ओर फिरावति फिरै ॥
अस्त्र तेज निरवारो असै । सूरज अहो ओस को जैसे ॥
ताहि परीछत निकट निहार । कौन आहि यह कियो विचार ॥
अमित प्रभाव धर्म पालक हरि । अस्त्र तेज कियो दूर गदा करि ॥
अंतरध्यान ताहि हरि भए । बालक देखत ही रहि गए ॥
जव अनकूल भए प्रह सबै । बाल गर्भ ते प्रगटे तबै ॥
पांडू वंस धर प्रगटे जानौ । बली पांडू ही प्रगटे मानौ ॥
धर्म पुत्र ने बहु सुख पाए । धोम्य कृपादिक विप्र बुलाए ॥
तिन पै मंगल वचन कहाए । पुनि सब जन्म कर्म करवाए ॥
बालक जन्म तीर्थ नृप जानि । दए बहुत विप्रन को दान ॥
अन्न सुवर्न मही गज ग्राम । दीने सुंदर घोरा धाम ॥

अति संतुष्ट भए द्विजवर जव । नर्म युधिष्ठिर सो बोले तब ॥
हे नृप यह जु पुर को वंस । दुरवट देव कियो निखंस ॥
तुम पै बहुत अनुग्रह कीनी । यह बालक मु विष्णु ने दिव्यो ॥
ताते विष्णुरात यह नाम । सबसे प्रगटेगा अभिराम ॥
अहो यह महा भागवत है । पुनि याको जस सब ठां छै है ॥
युधिष्ठिर उवाच—

हमरे वंस राजरिष भए । पुन्य चरित्र जिनके बहु छए ॥
तिनको यह अनुवर्ती है । जसरु साधुता तैसा पै है ॥
ब्राह्मण ऊचुः—

अहो यह प्रजहि पालिहै असैं । मनु को सुत इक्ष्वाकु सु जैसे ॥
मन्य प्रतिग्य द्विजन के पालक । है है जस दसरथ के बालक ॥
जैसो सिवो भूप बिख्याता । यह तैसो सरनागति दाता ॥
बंधु द्विजन को जस करिहै यों । सुत दुष्कुंत भरत नामें ज्यों ॥
धनुष धरै इनमें वर असैं । हे नृप दोऊ अरजुन जैसे ॥
अग्नि समान तेज को धरिहै । पुनि यह वारिधि सम दुस्तरिहै ॥
है है बली सु सिव समान । हिम पर्वत मे सीतल जान ॥
बहुरो सहनसील वसुधा से । दोष सहन को मात पिता से ।
सिव ज्युं तुरत प्रसन्न जु है है । विधि ज्यों सब में समता कै है ॥
सबको आश्रय है है असैं । लक्ष्मीपति नारायन जैसे ॥
उत्तम उत्तम गुन करि अहो । इनको कृष्ण तुल्य ही लहो ॥
रंत देव सो दाता ख्यात । धर्म ग्यानि में लहो जजात ॥
पुनि प्रह्लाद सरीखा अहो । कृष्ण भजन में आप्रह लहो ॥
धीर्जवान बलि की सम है है । पुनि वृद्धनि की सेवा कै है ॥
अस्वमेध बहु जग्य करहिगें । पुत्र राजरिष सब उपजहिगें ॥
जो कोउ ऊधट मारग परिहै । तिनको दंड भली विधि धरिहै ॥
धर्म धरन को संवाद ही सुनि । कलिजुग को सुदंड दै है पुनि ॥
तच्छक प्रेम्ही शृंगी मुनिवर । ताते मीच आपनी सुनि करि ॥

यह सब संपत्ति को तजि जैहै । बहुरो हरि के पद कों पैहै ॥
 व्यासपुत्र सुकदेव महामुनि । तिनते आत्म तत्व पैहै पुनि ॥
 गंगातट मैं छोड़ि सरीर । निरभै पद पैहै हे वीर ॥
 जन्म कर्म मैं विप्र सुजान । असै नृप सो कियो बखानि ॥
 सब मैं सबै मनोरथ पाए । लै ले अपने घर को आए ॥
 सुंदर पुरुष दृष्टि जो परे । ताकी यह परीछा करे ॥
 सो यह जो मैं गर्भ निहारौ । ताते नाम परीछत पार्यौ ॥
 सो नृप पुत्र बढ़त भयो अलैं । सुकल पञ्च को चन्दा जैसैं ॥
 ससि हाय पूर्ण कलनि सौं जैसै । सुखनि सों भयो परीछत तैसै ॥
 जात द्रोह कों चहै निवार्यौ । अस्वमेध को करन विचार्यौ ॥
 कर अरु दंड बिना ते धन जो । धर्म पुत्र देखो न कहू सो ॥
 लखि भैया के मन की सब पुनि । कृष्णचद्र जूँ की बानी मुनि ॥
 उत्तर दिसा गए सब धाय । तहां ते परो द्रव्य बहु लाए ॥
 ता कर मत्त के किए समाज । हूँ संतुष्ट डरवि महाराज ॥
 तीन सु अस्वमेध यग्यनि करि । जज्ञत भयो नृप सुंदर श्रीहरि ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृतं
 द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

दोहा—गांधारी धृतराष्ट्र पुनि, विदुर वचन सुनि कान ।
 जैहैं छोड़ि युधिष्ठिरहि, ध्याय तेरहै जानि ॥

सूत उवाच—

विदुर तीर्थ यात्रा में पायो । आत्म ग्यान जो मैत्रे गायो ॥
 तासो सबै जानि कै हे मुनि । आवत भए हस्तिनापुर पुनि ॥
 विदुर प्रश्न मैत्रे सों किए । तिनने ताके उत्तर दिए ॥
 भई विदुर की हरि में रति जब । प्रश्न छोड़ि चुर होय गए जब ॥
 कृपाचार्य संजय जु जुसु जुत । पुनि धृतराष्ट्र समेत पांडु सुत ॥

कुंती द्रुपद सुता गांधारी । कृपा सुभद्रादिक जे नारी ॥
 ओगी तिया जानि की जितनी । पुत्रनि सहित और निय किती ॥
 सब लखि उठे विदुर को अैसे । प्राननि आए इंद्री जैसे ॥
 हे मौनक सब मिलि नारी नर । विदुरहि सिर नायो आनंद भर ॥
 विकल विरह उतकंठा छाए । प्रेम सो सबके दृग भरि आए ॥
 बैठे विदुर विज्ञेना पर जब । धर्म पुत्र पूजा कीनी तब ॥
 भोजन ले बैठे आसन पर । भ्रम सब जात रहौ आनंद करि ॥
 सबके मुनत नम्र अति राजा । बोले विदुरहि सुख के काजा ॥
 युधिष्ठिर उवाच—

विवरु अग्नि ते बहु विपतनितै । मात सहित हम तुम राखे है ॥
 हम सब जीये पञ्च तिहारी । अब कवहूँ सुधि करत हमारी ॥
 तुम धरि मंडल विचरत अहो । कैसे करत जीवका कहो ॥
 धरमें मुख्य तीर्थ है जिते । कहौ विदुर तुम से ये किते ॥
 अहो तुम से जे साथ अनूप । तै तो आए तीर्थ रूप ॥
 करै पवित्र तीर्थ से सारे । जिनके हिय मांही हरि प्यारे ॥
 अहो विदुर जे बंधु हमारे । जिनके कृष्ण देवता प्यारे ॥
 ते सब कुसल द्वारका मांही । तुम तो वे कहूँ दीखै नांही ॥
 अैसे धर्म पुत्र पूछी जब । तब श्री विदुर कही नोके सब ॥
 एक यादवनि को जे नास । सो न विदुर ने कियो प्रकास ॥
 जो दुख नरनि आप ते आवै । ते दयाल जन नाहि जनावै ॥
 जाते जो जन दुःखित आहि । साधु नैक सह सकन न ताहि ॥
 पूजै सवन विदुर ज्यों ठाकुर । कोऊ दिना रहे ताही पुर ॥
 सबको लें आनंदहि दियो । बड़े भ्रात को मंगल कियो ॥
 जमहि आप मान्डव्य दियो जब । विदु सूद्र तन यम धार्यौ तब ॥
 तबलौ पितर अर्जमा जोई । पापिन दंड देत रहौ सोई ॥
 लख्यौ परीछत कुत्तधारी जब । धर्मपुत्र आनंद छये तब ॥
 लोकपाल सम भैया प्यारे । बहु संपत्ति करि हरपे भारे ॥

यो जिन घरनि मांहि मति धारी । गृह धर्मनि करि मत्त सुभारी ॥
 तिनको दुस्तर काल आहि जो । हे मुनि बिना जानै वीथ्यो सों ॥
 विदुर जानि ता कालहि लयो । पुनि धृतराष्टहि बोलति भयो ॥
 हे नृप ह्यां ते बेगि पधारो । देखो भै आयो है भारो ॥
 हे नृप यह जु काल अति दुस्तर । मिटै नाहि कबहू काहू करि ॥
 भगवद्रूप काज यह जानौ । हम सब के ढिग आयो मानो ॥
 हे नृप जब सुकाल वह आवै । तब नर छिन में सब छिटकावै ॥
 प्यारे प्रानन हू कों तजै । कहौ अब कहा धनादिक भजै ॥
 पिता भ्रात सुत मित्र मरे जब । हे नृप तुमहू वृद्ध भए जब ॥
 अब सब उद्यम थके तिहारे । तऊ विराने गृह अति प्यारे ॥
 नरनि बड़ी जीवनि की आस । तामें तुम हू करि बिस्वास ॥
 भीम के दए पिंड को औसैं । खात द्वार पर कूकर जैसे ।
 जिनको अग्नि दई विष दियो । राज्यरु धन छिनाय सब लियो ॥
 जिनकी तियनि दिए दुख महा । जिनके दिए अन्न करि कहा ॥
 हे नृप कृपन जियो तू चाहै । मरिबे को नंकु न अवगाहै ॥
 तऊ हक दिन तन गिरहे औसैं । हे नृप बस्त पुरानो जैसे ॥
 हू विरक्त अरु तजि अभिमानै । बन में जाय न कोऊ जानै ॥
 हरि भज बन में तन छिटकावै । सोऊ वृद्ध नर धीर कहावै ॥
 आप ते अथवा और सु नर तें । लै बैराग जाय कढ़ि घर ते ॥
 हिये सदा कृपन को राखे । ताको शास्त्र नरोत्तम भाषै ॥
 अब तुम उत्तर दिसि को जावो । हे नृप काहू कौ न जनावो ॥
 फिर नृप दुस्तर काल आय है । सबके सबरे गुन मिटाय है ॥
 छोटी भैया विदुर जु आहि । यों तिन ग्यान दिखायो ताहि ॥
 ग्यान नैन तब ताके भयो । सब सो दृढ़ सनेह तजि दयो ॥
 मारग दिखाय विदुर नें दीनों । गमन अलग्ग धृतराष्टर कीनो ॥
 पतिव्रता सुसील गांधारी ! पति को जात लख्यौ सुखकारी ॥
 पतिही के पाछे गई सोऊ । गए हिमाचल कौ ते दोऊ ॥

तहां के दुखनि दए सुख औसैं । घाव सूर को रन में जैसे ॥
 संध्या बंदन कियो युधिष्ठिर । अग्निहि होम द्विजन नायो सिरा ॥
 भूम सूवन गऊ तिल दए । धृतराष्टहि सिर नावन गए ॥
 तीनों में एकोन लख्यौ तहां । गांधारी धृतराष्ट विदुर जहां ॥
 तहां बैठे संजय सुख काजा । तिनसो बोलौ व्याकुल राजा ॥
 वृद्ध आंधरे पिता हमारे । कहो इहां ते कहां पधारे ॥
 पुत्र सोक करि पीड़ित माता । अरु हमरे काका सुखदाता ॥
 मैं तो अहो मंद मति महा । मो मे कछु दोष लखि कहा ॥
 ता करि दोऊ दुख को पाय । गिरे तौ नाहि गंग मैं जाय ॥
 पांडु जय परलोक पधारै । तब हम सबै हुते अति वारे ॥
 जिन हमरे बहु क्लेश निवारै । ते अब ह्यां ते कहां पधारै ॥
 सूत उवाच—

संजय दुखित बिरह सो महा । विकल नेह सो कहिये कहां ॥
 जात लखे धृतराष्ट न जाते । संजय उत्तर दियो ना ताते ॥
 फेर पूछ आसू सब लए । बुधि करि मन कों थांभत भए ॥
 धृतराष्ट के चरन संभारत । भयो युधिष्ठिर सो ऊचरत ॥
 संजय उवाच—

हे नृप माता पिता तिहारे । हम नही जाने कहां पधारै ॥
 हे नृप सु तो साध है महा । सोहू ठग गए कहिये कहां ॥
 ताही छिन नारद मुनि आए । संग तवरु गंवर्बहि ल्याए ॥
 नृप भैयनि जुत सनमुख गयो । पूजो नाय सिर बोलत भयो ॥
 हे नारद वो पिता हमारे । हम नही जाने कहां पधारै ॥
 पुत्र हीन व्याकुल गांधारी । मैं नहीं जानो कहां पधारी ॥
 क्लेश पार करिबे को अहो । खेवट तुमही ताते कहो ॥
 मुनिन माहि उत्तम नारद मुनि । बोलत भये धर्म सुत सों पुनि ॥
 हे नृप हरि के वस जग सबै । ताते सोच करो जिन अबै ॥
 लोकपाल अरु लोक हैं जिते । हरि ही को बल बहुत हैं तिते ॥

सोई हरि सब नरनि मिलावै । पुनि सोई सबको विछरावै ॥
 निगम जेवरी नाम फंदन करि । बंधे बहुत बलि हरि कों सब नर ॥
 जैसे रजु में बहु गलफंदे । बहुत धनी को बलि पसु बंधे ॥
 जैसे बालक सबै खिलोनुनि । कभू मिलाय करै न्यारे पुनि ॥
 ऐसे ही हरि सबै मिलावै । पुनि कबहु सबको विछरावै ॥
 हे नृप जो नर को ध्रुव जानौ । अध्रुव अथवा दोऊन मानौ ॥
 तौ तुम सोच करन कों नाहिन । मोह तै भयो नेह इकता बिन ॥
 हे नृप जो अग्यानहि आहि । भई मन व्याकुलता तजि ताहि ॥
 मो बिन वे अनाथ क्यों जीहैं । हे नृप तजिये दुख्य नदी है ॥
 काल कर्म गुन के आधीन । पंचभूत तन अहो प्रवीन ॥
 सो औरन राखेगौ कैसे । अजर गिल्यो पुरुष होय जैसे ॥
 हे नृप पसु घासकि खाहि । मानुष पुनि पसुयन खा जाहि ॥
 बड़े जीव खाहि छोटे जीवन । ताते जी की जायही जीवन ॥
 स्वप्रकास सर्वात्म ईस हरि । भए अनेक भांति माया करि ॥
 सबके बाहर भीतर राजै । देखि ताहि जग रूप विराजै ॥
 हे नृप सोई श्रीभगवान । काल रूप जग पालक जान ॥
 आनि प्रगट धरनी में भयौ । असुरनि सो मारन मन द्यौ ॥
 देव काज लै सबरौ करौ । कछु अवसेप हिय में धरौ ॥
 ईश्वर ह्यां विराजै जो लौं । तुमहूँ सबै विराजौ तौ लौं ॥
 गांधारी धृतराष्ट विदुर जे । दछन दिसा हिमाचल कीते ॥
 हे नृप जाय प्राप्त भए अवे । जहां रिपिन के आश्रम सबै ॥
 सात प्रवाह गंग जहां किये । जिन करि रिपिन बहुत मुख दिये ॥
 ताते ता गंगा को नाम । सप्तश्रोत यह है अभिराम ॥
 असनान त्रिकाल जाय तहां कियो । होमि अगनि जल ही को पियो ॥
 तिननि कियो निश्चल मन अवै । बहुरो तजी वासना सबै ॥
 आसन जीति स्वाम जीति पुनि । इंद्री छहो रोकि लीनी पुनि ॥
 मेल तीन गुन की ही जित्ती । कृष्ण ध्यान सों नासी तित्ती ॥

लिंग देह बुद्ध मांही धरी । बुद्धिहि एक जीव में करी ॥
 सो लै ब्रह्म मांही राखौ यो । बट अकास आकास मांही जी ॥
 गई वासना प्रकृति मुनिन की । रोकि लई गति इंद्री मन की ॥
 सब अहार तजि ह्वै रहै अैसे । हे नृप दूंद बृद्ध कोऊ जैसे ॥
 हे नृप कर्म तजे तिन सबै । ताहि न अंतराय होउ अवै ॥
 दिन पांचवो आज तै अहै । तब धृतराष्ट देह छिटकैहै ॥
 तन में अग्नि धारना धरिहै । ता करि कुटी सहित सो जरिहै ॥
 पति का जरत देख दुख भारी । तिही अग्नि गिरिहै गांधारी ॥
 हे नृप धर्मपुत्र सुखकारी । विदुर देखि यह अचिरज भारी ॥
 हर्ष साक दोऊ कौ पैहै । पुनि तहां ते तीर्थन को जैहै ॥
 धर्म सुतहि यो कहि के नारद । तुंवर जुत गये स्वर्ग विसारद ॥
 तिनको वचन हिय धरि लियौ । धर्म पुत्र सो कहि तजि दियो ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजाति कृते

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय

दोहा—अध्याय चौदह धर्म सुत, लखि उत्पात सभीत ।

अर्जुन कहिहै कृष्ण के, अंतर्हित की बात ॥

कृष्णचंद्र के चरित निहारन । पुनि बंधुनि के देखन कारन ॥
 अर्जुन जाय द्वारका छाय । सात मास हू में नहीं आय ॥
 तब उतपात भयानक भारे । भूप युधिष्ठिर नें सु निहारे ॥
 प्रथम काल गति उलटी लही । धर्म रितुन के पलटे सही ॥
 पाप रूप वृत्तिहि नर धारै । क्रोध लोभ अति भूठ उचारै ॥
 कपट रूप देखो व्यौहार । छल सो मिल्यौ निहार्यौ प्यार ॥
 माता पिता तिया पति लरै । भैया सुहृद कलह अति करै ॥
 ऐसे बहुत अमंगल देखै । लोभ अधर्म नरनि में पेखै ॥
 भीमहि तब बुलाय दिग लए । धर्म पुत्र पुनि बोलत भए ॥
 कृष्णचंद्र के चरित निहारन । पुनि बंधुनि के देखन कारन ॥

मैं अर्जुन द्वारका पठायो । सात मास हूँ मैं नहि आयो ॥
 अहो भीम मैं जानत नांही । किह हित रहे द्वारका मांही ॥
 नारद जू जो काल बनायो । सोई कहा काल अब आयो ॥
 जा जू काल में कृष्ण जु ग्यान । करिहै रूपहि अंतरध्यान ॥
 तन धन कुल सुत रानी राज । हमें मिलै ता हरि तें आज ॥
 पुनि जा कृष्ण कृपा ते अवै । वैरी जीत लिये हम सवै ॥
 अहो अब ये दारुन उगाता । मेरी मति मोहत दुख दात ॥
 भूमि गगन के तन के जिते । ये उतपात होत हैं किते ॥
 मेरे नैन भुजा ऊरु जे । पुनि पुनि सबै अंग फरकै ये ॥
 और जु कंप होत हिय मेरे । दैहै कछु दुःख ये नेरै ॥
 स्थार वदन तें अग्नि उगारे । मूरज सनमुख होय पुकारै ॥
 स्वान सवै मेरे ढिंग आवै । हूँ निसंक रोय डकरावै ॥
 मोहि मृगादिक बायो करै । गर्दभ आदि दाहिने परै ॥
 अरु मेरे घोरा है जिते । रोवत मैं देवत हो तिते ॥
 अरु कपोत ये मृत्यु जगावै । कऊवा उल्लू मनहि कंपावै ॥
 बुरे शब्द बोलत है ये सब । ऊजर जगत कियो चाहै अब ॥
 दावानल घेरत सब लोक । गिरिन सहित कांपै धरि ओक ॥
 दिसा धूँरी है सब जान । गरजै धन होय बज्र सुगत ॥
 चले कठोर पवन कहै कहाँ । रज सों करि अंधियारो महाँ ॥
 मेघ रुधिर की बरपा करै । स्वर्ग मभार देवता लरै ॥
 भूत नरनि जुत धर आकास । अवै जरत सो करत प्रकास ॥
 ओमित नदी नद सर मन भए । मूरज कांति हीन हूँ गए ॥
 बज्ररा मुख में थन नहीं लेत । गाय हूँ तिनै दूध नहि देत ॥
 आग घाँव हूँ सो नही जरै । कहौ काल यह कैसी करै ॥
 गाय दृगनि ते आसु बहावै । खरकनि विजरा हर्ष न पावै ॥
 प्रतिमन के तन ते जल चलै । दौर जाँव तजि रोवै भलै ॥
 वन घर खान गाँव पुर देस । इनमें नहि सोभा को लेस ॥

महा दुःख पावत है अवै । ये कहा दुःख दिखैहै अवै ॥
 उतपातन को कारन जो है । अहो भीम मैं जान्यो सो है ॥
 कृष्ण चरन करि रहत भई अब । याते भाग हीन धरनी सब ॥
 ऐसे देखि असंगल महा । सोचति भूप होयगो कहा ॥
 इतने नृप के सनमुख अर्जुन । द्वारापुर ते आए हे मुनि ॥
 नृप चरननि में आय परे यू । पहिले कवहू नाहि परे ज्यू ॥
 आतुर पुनि नीचो मुख करै । नैननि ते जल धारा परै ॥
 कांतिहीन हिरदो कांपै पुनि । औसो लखौ अर्जुनहि हे मुनि ॥
 तब नारद को बचन विचारत । भए भूप अर्जुनहि उचारत ॥
 हे अर्जुन सातव मधु भोज । वृष्णुदसा हरि अंब अति औजा ॥
 ये सब जादव सुजन हमारे । सुख सो बसत द्वारका प्यारे ॥
 सूर हमारे नाना अहो । तेऊ सुख सों हैं यह कहो ॥
 अरु मामा वसुदेव हमारे । ताके भ्रात कुसल सों सारे ॥
 पुनि वसुदेव तिया जे सात । सुतनि सहत सुख सों हैं भ्रात ॥
 अरु तिनकी नारी सुखकारी । तिनके कहो कुसल हैं भारी ॥
 उपसेन देवक को भ्रात । जीवत जास नीच हो तात ॥
 सुख सो है अक्रूर जयंत । गद सारन हृदिकादि अनंत ॥
 कृतवर्मारु शत्रु जित अहो । तेऊ सुख सों हैं यह कहो ॥
 पुनि यदुकुल के प्रभु बलदेव । ते सुख सो हैं हे नरदेव ॥
 महारथी प्रद्युम्न जु अहो । तेऊ सुख सो हैं यह कहौ ॥
 पुनि अनुरुद्ध बड़े बलधारी । तेऊ कहो सुखी हैं भारी ॥
 जांबवती सुत साँव सु सैन । चारुदेव पुनि आहि सुपेन ॥
 कृष्णचंद्र के सुत नाती जे । कहो अहो सब हैं सुख सौ ते ॥
 उद्धव श्रुतदेवादिक जिते । हैं सुख सों हरि अनुचर इते ॥
 नंद सुनंद कुसल हैं अर्जुन । अरु जो जादव श्रेष्ठ तेऊ पुनि ॥
 हम सों जिनन प्यार बहु कीये । राम कृष्ण की भुजनि सु जीये ॥
 ते पुर मांहि कुसल हैं कहौ । कवहू हमे संभारत अहो ॥

द्विज पालक गोविंद मुरारी । कृष्ण भक्त वत्सल सुखकारी ॥
 सभा सुधरमा में तै अहो । सुहृदनि सहित सुखी हैं कहौ ॥
 जग के मंगल को विस्तारन । जन पालन धन दन सुकारन ॥
 मीत सेस के आदि पुरुष जे । जदु कुल समुद मांहि राजत ते ॥
 हरि करि रञ्जित द्वारापुरी । सभा यादवनि की जहां जुरी ॥
 तहां सब सुख सों कीड़ति है यौ । हरि अनुचर बैकुंठ माहि त्यों ॥
 सोरह सहस एक सो आठ । सतभामादि तियनि के ठाट ॥
 जिनके हरिपद सेवन जोई । सब ते मुख्य कर्म है सोई ॥
 ताही करि जु देवता जिते । जुद्ध मांहि जीतै हैं तिते ॥
 जीत सकलपदुमादिक जेई । सचीउ चित हरि लीने तेई ॥
 कृष्ण भुजन ही सों जीवन जे । औसे निरभै यादव हैं ते ॥
 इंद्रहि उचित सुधर्मा है जो । अपने बल करि लै आए सो ॥
 तिही सभा को जादव सबै । चरननि करि रूंदत है अवै ॥
 अहो भ्रात आनंद है तोहि । तेज हीन तू भासत मोहि ॥
 बहु दिन रहे द्वारका मांही । भइ अवग्या तौ कहूँ नांही ॥
 किधो कठोर बचन दुखदाई । तिन करि पीड़ा तौ नहीं पाई ॥
 वस्तु देन कह जाचक को पुनि । नट तो नाहि गए हे अर्जुन ॥
 अथवा बालक बृद्ध द्विज गाय । रोगी नारी नर दुख पाय ॥
 रञ्जक जानि सरन तुव आये । तिनके दुख तुम नांहि सराये ॥
 उत्तम तिय को संग तजि दियो । किधो नीच तिय को संग कियो ॥
 कै अवर्म करि मग के मांही । तोहि किनू हूँ जीतौ नांही ॥
 किधो बाल बृद्धन नहि दियो । इकले तुम भोजन करि लियो ॥
 अथवा तुमको उचित न जोई । निंद काम तुम कीनो सोई ॥
 अथवा कृष्ण बंधु अति प्यारे । तिन बिन रहित भए हम सारे ॥
 सोई मोच करन तुम जाते । कांत हीन हूँ गए सु ताते ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजाति कृते
 चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा—ध्याय पंद्रह मांहि नृप, कलि को देखि प्रकास ।

दे करि राज परीछत ही, आप गए हरि पास ॥

सूत उवाच—

कृष्ण सखा अर्जुन सुखकारी । मीत बिरह करि पीड़त भारी ॥
 बहु संका के उचित सरूप । औसे ताहि कही जब भूप ॥
 हृदै कमल सूक्यो सुखरासि । पुनि सुख को सब गयो प्रकास ॥
 कृष्ण चरन को ध्यान करत पुनि । नहि दे सको उत्तरहि अर्जुन ॥
 नीठ आसुवन थांभत भए । करि सो नैन पूछ पुनि लए ॥
 कृष्ण बिरह सो प्रेम सु छयो । उतकंठा सों कातर भयो ॥
 सुहृद स्वारथी सखा मीत हरि । पुनि पुनि ताहि को सुमरन कर ॥
 गद गद हूँ असुवा उमगाए । बड़े भ्रात को बचन सुनाए ॥
 हे नृप कृष्ण सु बंधु हमारे । ता बिन रहत भए हम सारे ॥
 देवन दुःसहै तेज हमारे । ता बिन नष्ट भयो अव सारे ॥
 इक छिन हू को तास बियोग । तासो नीके लगै न लोग ॥
 जैसे प्राणी प्राण रहत जो । नेकु न नीको लागत है सो ॥
 दुःख स्वयंवर में ये आए । राजा मनमथ के मद छाए ॥
 तहां मैं सर सों छेड़ी मोन । सब को तेज कियो पुनि छीन ॥
 ता हरि ही को आश्रै करिकै । ल्यायो मैं सु द्रोपदी हरिकै ॥
 निकट मात्र ही ते हम ता के । जीत देव सहित मगवा के ॥
 पुनि खांडव वन अग्नि दि दयो । ता मैं मयहि राखि पुनि लयो ॥
 ता ने मोहि सभा यह दई । मायामय रचना निरमई ॥
 हे नृप तेरो जग्य भयो जब । सब दिस ते नृप बलि ल्याए तवा ॥
 बड़े भ्रात जो भीम तिहारै । दस हजार हाथी बल धारै ॥
 ताने कृष्ण तेज कर मारो । जरासिंध जो दुष्ट हो भारो ॥
 भैरों की बल देन सुकाजा । जरासिंध रोके जे राजा ॥
 ते सबरे श्रीकृष्ण छुटाय । तुमरे जग्य मांहि बलि लाय ॥

हे नृप तुमरी तिय के केस । श्लावा लायक निपट सुदेस ॥
 जय माहि अवषेक किए जे । ल्याए दुष्ट सभा में गह ते ॥
 तियके दगन माहि जल भरो । तब तिन नीचन को बध करौ ॥
 तिनकी तिय भई विधवा महा । कहो प्रताप कृष्ण को कहा ॥
 दुष्टन हमरे घर पठइ पुनि । सब सिष्यन जुत दुरबाला मुनि ॥
 तिनते हमको क्लेश भयो जब । ते श्रीकृष्ण तहां आए तब ॥
 आय साग के पातहि लियो । जल के संग पान सो कियो ॥
 जल में न्हात हुते मुनवर जे । मानत भए वृष त्रिभवन ते ॥
 जास तेज करिकै मैं रन मैं । अचरज उपजायो सिव मन मैं ॥
 सहित भवानी सिव रीझे जब । अपनो अस्त्र दयो मोको तब ॥
 याही तन करि स्वर्गहि गयो । आयो इंद्र आसन मैं लयो ॥
 गांडीवहि भुज धरै हमारी । कृष्ण तेज करि अंकित भारी ॥
 तिने स्वर्ग मैं इंद्रादिक जे । वैरिन बध हित आन नए ते ॥
 उन श्रीकृष्ण बिना अब अहो । हीन भयो यह अर्जुन लहो ॥
 कौरव फौज समुद्र हे भूप । तहां भीष्मादि तिमंगल रूप ॥
 ताहि एक रथ करि मैं तरयौ । हरि नें मोहि बेधुलै करयौ ॥
 अरु जो नृप गायन ले गए । तिनको पुनि हम लावति भए ॥
 चीरा मुकट अमोल है जिते । नृप सीसन तै लै लयो तिते ॥
 भीषम सत्य गुरु करन है जहां । छाए रथ भूपन के तहां ॥
 कृष्ण देखि सबकी हरि लई । बल उत्साह आयु चतुरई ॥
 द्रोणाचारज कर्न अस्थामा । भीष्म त्रिगर्त जयद्रथ नामा ॥
 पुनि वाल्मीकि सुसर्मादिक जे । जानत भए अमोघ अस्त्र ते ॥
 ते मोको छै सकै न ऐसे । अस्त्र सस्त्र प्रह्लादहि जैसे ॥
 हरि के चरन कमल सुख देत । साधु भजे मंगल के हेत ॥
 सो हरि हमनु स्वारथी करै । हम तो महं कुबुध सों भरें ॥
 मेरे घोरा हार गए जब । भूमि उतरि मैं जल प्यायो तब ॥
 हरि प्रभाव सो मोहित सब नर । नाहिन मोहि चलाय सके सर ॥

हे नृप हरि जूं के परहास । जिनमें सुंदर हांस प्रकास ॥
 हे अर्जुन हे पारथ प्यारे । सुन कुरु नंदन वचन हमारे ॥
 ये हरि के जु वचन हितकारी । अक्षर महं मधुर हिय हारी ॥
 हे नृप सु जब सुमरन हम करै । तबही हमरे मन को हरै ॥
 सोवत बैठत चलत अरु खात । निज जस कहन समे हे भ्रात ॥
 बक्र वचन हम कहे सु भारी । तुम साचे हे मित्र मुरारी ॥
 अरु मेरे अपराध है जिते । कृष्णचंद्र नें सह लए तिते ॥
 सुत अपराधहि पिता सहै ज्यों ! मीत मीत के अपराधहि ज्यों ॥
 सो पुरोत्तम सखा हमारे । सुहृद अरु अति प्यारे सो प्यारे ॥
 हे नृप तिन बिन मैं अब भयौ । पुनि मम हृद सून्य हूँ गयौ ॥
 यह जु कृष्ण को परि कर सबै । ल्यावत मार्ग माहि मोहि अबै ॥
 जीत तुच्छ गायनि लयो जैसे । हे नृप इंद्र अबला को जैसे ॥
 धनुष बेई पुनि वान है बेई । रथ अरु रथी अस्व पुनि तेई ॥
 तिनते सब नृप आन सु नए । जिन में हरि बिन बिकल सु भए ॥
 नेकहू फल नहीं दीनौ जैसे । ऊसर में को बोयो जैसे ॥
 सबही व्यर्थ होय गयो जैसे । राख होम बाग नट कैसे ॥
 हे नृप सुहृद द्वारका के जे । जिनकी तुमनि कुसल पूछी ते ॥
 विप्र आप ते मोहित भए । मदिरा पीय मत्त होय गए ॥
 पुनि अजान से हूँ गए आछै । लरत भए मूर्किन सों पाछे ॥
 सबही अंतरहित तहां भए । चार पांच बाकी रह गए ॥
 हरि ही की लीला यह जानो । और कछु हिय में मति आनो ॥
 बेई परसपर सबको मारत । बहुर परसपर बेई मारत ॥
 जैसे जल में बड़े जीव जे । खाय जाय छोटे जीवन ते ॥
 हे नृप पुनि जो दुरबल आहि । खाय लेत है बली सु ताहि ॥
 बड़े बड़े जु परसपर खात । बली बली हूँ तौ खा जात ॥
 यो ही यादव बड़ड़े जिते । छोटनि को मारत भए तिते ॥
 बड़े बड़े जु परसपर लरे । बली बली हूँ त्यो ही मरे ॥

बलि निरदलनि को पुनि मारे । ऐसे हरि घर भार उतारे ॥
देस काल अर्थन सों सानी । हृदै तप नासक हरि बानी ॥
जब जब नृप हम सुमरन करै । तब तब हमरे हिय को हरे ॥

सूत उवाच—

गाढ़ प्रीति सों हे सौनक मुनि । सुख निध हरि के चरन कमल पुनि ॥
ध्यान करत भयो अर्जुन जबही । उज्जल सांत बुध भई तबही ॥
कृष्ण चरन को ध्यान कियो जब । अति ही भक्त प्रभाव बढ़ो तब ॥
ताते बुद्ध मलिनता जिती । जात रही अर्जुन की तिती ॥
रन में कृष्ण ग्यान जो कहो । काल कर्म भोगन रुकि रहो ॥
ताही ध्यान ही हे सौनक मुनि । प्राप्त भए श्री अर्जुन जुत पुनि ॥
ब्रह्मग्यान करि सोक सु गयो । जगत रूप भ्रम नष्ट सु भयो ॥
माया गुन लिंग देह नसायो । ताते पुनि पुनि जन्म विलायो ॥
हरि जादव अंतरहित भए । सुन के धर्म पुत्र मुरझए ॥
पुनि एकाग्र चित्त करि लीनो । कृष्ण निकट चलये मन कीनो ॥
अर्जुन कही जादव मुरारी । अंतरध्यान भए सुखकारी ॥
कुंती सुनि एकाग्र भक्ति करि । हरि में मन तबही दीनो धरि ॥
बहुर भई जग ते उपराम । लेत ही लेत कृष्ण को नाम ॥
भार हरा जादव तन सों यों । कांटे को कांटे करि कै ज्यों ॥
पुनि ता तनही दियो छिटकाय । हरि के दोऊ समान सु आय ॥
जैसे मत्सादिक वपु धरै । नट ज्यों फिर अंतरहित करै ॥
जा करि भार दूर लै कियो । कृष्णचंद्र सो तन तज दियो ॥
श्रवन सुजोग कथा है जिनकी । भई अप्रगट देहि जब तिनकी ॥
ता दिन कलजुग वार्यो भारी । जग्यन को सु अमंगल कारी ॥
लोभरु भूट कपट पुनि जामें । हिंसा बहुत अधर्म पुनि तामें ॥
असै कलजुग देस घरन में । दायो नृप तन में नगरन में ॥
लखि नृप वन को चलन विचारो । वन के उचित भेष ले धारो ॥
पुत्र परीक्षित नम्र निहार । अपनी सम सब गुनन विचार ॥

समुद्र प्रजंत भूमि जा आहि । करि अभिषेक दई नृप ताहि ॥
सूरसैन के देस हैं जिते । मथुरा में वज्रहि दए तिते ॥
प्रजापत्य यग्य नृप कियो । अग्निहि मन में धार सु लियो ॥
पुनि पट भूपन आदि हैं जिते । नृप ने छोड़ि दए तब तिते ॥
हो मैं ताको नष्ट सु भयो । बहुरो सब संसै कटि गयो ॥
इंद्री मन में मन सूँ प्रान में । प्रानहि होमे लै अपान में ॥
क्रिया समेत अपान जु आहि । मृत्यु मांहि लै होमौ ताहि ॥
मृत्युहि लै सरीर में धरौ । गुनन मंभार सरीरहि करयौ ॥
माया मांहि गुननि धरि दए । माया जीव में करत सु भए ॥
ब्रह्म जु निर्विकार उच्चरयौ । सुद्ध जीव नृप ता मैं करयौ ॥
फटे बसन भोजन तज दए । केस खुले मोनी पुनि भए ॥
जड़रु पिसाच बावरो जैसे । फेरि दिखावत रूपहि जैसे ॥
बहुरे ह्वै गए सुने ना बानी । सब तज चले कृष्ण मति सानी ॥
पुनि नृप उत्तर दिस को गए । बड़ड़े साधु जात तहां भए ॥
हरि को ध्यान कर तहां गए । जहां ते कोऊ फिरत नहि भए ॥
कलि को मीत अधर्म जु आहि । भूमि मोदि दायो लखि ताहि ॥
सब भैयन ने निश्चै कीनो । निश्चै करि नृप को संग लीनो ॥
सबने सबै तुच्छ करि जानै । कृष्ण चरन इक उत्तम मानै ॥
मन में धरै कृष्ण सुखकारी । ताते बढ़ी भक्ति अति भारी ॥
सबही सुद्ध बुद्ध ह्वै भई । कृष्ण पगन ते मति लग गई ॥
सब मालिन्य जात रहै पाछे । उज्जल होय गए चित आछे ॥
विपइन को दुर्लभ है जोई । पाई अहो पांडवनि सोई ॥
बिदुरहु हरि में चित्त लगायो । पुनि प्रभास में तन छिटकायो ॥
तब सब पितर लैन आए मुनि । बिदुर आपने धाम गए पुनि ॥
पुनि द्रोपदी आपने मांही । चाहि पतिनि की देखी नांही ॥
तब लगाय मति हरि में दई । हरिही को प्राप्त सो भई ॥
पांडु पुत्र हरि के सुखकारी । तिनको पुनि चरित यह भारी ॥

सब मंगल को दाता आहि। सुनै प्रीति सों जो नर याहि ॥
बाकी भक्ति कृष्ण में होई। बहुरो सिद्धिहि पावै सोई ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय

दोहा—कलि कर छीन धर्म धर, करत जहां संवाद ।
तहो परीछत जायहै, ध्याय सोरवें आदि ॥

मृत उवाच—

सब विप्रन सिद्धा दीनी जव । भूप परीछत धर पाली तव ॥
द्विजन जन्म में गुन कहे जे जे । विघ्नरात में आए ते ते ॥
उत्तर नाम पिना है जाको । इरावती पुनि नाम है ताको ॥
ताहि परीछत व्याह सु लाए । चारि पुत्र ता में उपजाए ॥
कृपाचारज को गुरु करि वरे । तीन जग्य हयमेध सु करै ॥
गंगा तट बहु दान सु दए । जहां सवै सुर आवत भए ॥
कलि जु सूद्रनृप रुहहि धारै । पग करि गऊ वैलन को मारै ॥
देखि दिगविजै में नृप लयौ । निज बल तै ताहि दंड सु दयो ॥

मौनक उवाच—

नृप सरूप करि सूद्र जु आहि । पग करि गायहि भारत ताहि ॥
दंड दिगविजै में नृप दयो । मार ही कौन तास को लयौ ॥
कृष्ण कथा जो या मैं अहो । तौ यह सूत हमै तुम कहो ॥
अथवा जे हरि पद मकरंदहि । पीवत जिन साधुन की तौ कहि ॥
और असधुन की कहा बात । जा ते व्यर्थ आयु नर जान ॥
महां जु अल्प आरवल जिनकी । मुक्ति मभार चाह पुनि तिनकी ॥
तिनको ईश्वर मृत्यु जु आहि । मख में हमनि बुलायो ताहि ॥
हां है अहो मृत्यु यह जो लौ । कोऊ नाहि मरैगा तौ लौ ॥
ईश्वर रूप मृत्यु जो आहि । या निमित्त हम बुलई ताहि ॥
ता ते हरि लीला अमृत जो । अहो विवेकी पान करो सो ॥

जे आलसी मंद मति महा । अल्प आरवल कहिये कहा ॥
बृथा कर्म दिन आयुहि हरै । रात्रि आयु निद्रा छै करै ॥
सूत उवाच—

जव नृप कुरु जंगल में बसौ । कलि तव आय राज में बसौ ॥
सुनिके सूर तनक सुख पायो । लेकर अपनो धनुष चढ़ायो ॥
घोरा स्याम लगे जगमगे । सुंदर स्वर्न आभरन पगे ॥
ता रथ पै सु परीछत चढ़ै । सिंह धजा फहरत छवि बढ़ै ॥
चढ़ि के चले दिगविजै हेत । चतुरंगनी फौजै सुख देत ॥
केतमाल भद्रास्वह भारत । उत्तर कुरु किंपुरुष इलावृत ॥
पुनि रमनक हरि वरसहि रन में । जीत सबन बलि ल्याए अति सें ॥
अहो परीछत जात है जहां जहां । सुनत पांडवनि को जस तहां तहां ॥
जो जस कृष्णचंद्र ने कर्यौ । सो सब नृप के कर्तनि पर्यौ ॥
पुनि अपनी रछा सुनि लीनी । द्रोण अस्त्र ते हरि जो कीनी ॥
पुनि पांडवनि यादवन ने जो । करी मीताई भूप सुनो सो ॥
हरि में भक्ति पांडवनि करी । सो नृप नीके काननि धरी ॥
सुनि संतुष्ट परीछत भए । नैन प्रीति सों विकल सु गए ॥
जव उदार नृप कहिये कहा । दिए अमोल हार पट महा ॥
नेही पांडव देखि मुरारी । भए सारथी अन्याकारी ॥
सखा पारषद् दूत भए फिर । अमृति करी बहुत नायो सिर ॥
पाछै चलै पहरुवा भए । सुनि नृप रस में डूबत गए ॥
भक्ति करी नृप हरि पद मांही । हरि सम त्रिभुवन में कोऊ नांही ॥
पूर्व पांडवनि जो कछु कियो । ताही में नृप ने मन दियो ॥
तुरतही एक भयो अचिरज जो । हे सुनि सुनो कान दै कै सो ॥
कांतहीन बज्ररा करि हीन । अस देखो नृप गाय नवीन ॥
एक पाय को धर्म जु आहि । सुत की ज्यौ बालौ सो ताहि ॥
देह तुम्हारो नीको अहो । हिय में कहां दुख्य सो कहो ॥
जा ते मुख मलीन है महा । दूर गया को कोऊ बंधव महा ॥

अथवा एक पांय को मैं जो । ता को सोच करत हौं तुम हो ॥
 के तोहि सूद्र खांयगे अहो । सोचति सो यह हम सो कहो ॥
 अथवा अहो जग्य रह गयो । ताके सोच मांहि मन दयो ॥
 पै मेंधन तैं जल नहीं परै । वाते सोच प्रजा को करै ॥
 निरदै जन जिनको दुख धरै । पति अरु पिता ना रछा करै ॥
 औसी तियरु वाल जे अहो । तिने कहा तुम सोचति कहो ॥
 के द्विज नीच जु पंडित महा । तिनको तुम सोचत हो कहा ॥
 के भूपन करि दुखित ग्राम । तिनको सोच करत हे भाम ॥
 नीच नृपति उत्तम द्विज अहो । सेवत तुम सोचति सो कहो ॥
 कलि करि व्यापित जे नृप महा । तिनको तुम सोचति हो कहा ॥
 सैन पांन बसिबो स्नान । अरु जिनकै तिय संग प्रधान ॥
 ऐसे जे जु जीव है अहो । तिने कहा सोचति हो कहो ॥
 हे माता अति भार जु आहि । प्रगटे कृष्ण उतारन ताहि ॥
 जिनके कर्म मुक्ति ते भारी । अंतरहित भए सोव मुरारी ॥
 सुमर । तिनके कर्म जु महा । उनको सोचति हो तुम कहा ॥
 हे माता हे धरनी अहो । अपनी जो पीड़ा सो कहो ॥
 जाते तरा तन कृस भारो । सुर पूजत सोभाग तिहारो ॥
 काल बलीन में बली सु महां । सो सोभाग हरयो तिन कहां ॥
 धरावाचः—
 अहो धर्म मा सो पूछत जो । तुमही नीकै जानत हो सों ॥
 सत्य द्विमा संतोष सुधाई । सहनसीलता पंडितताई ॥
 निर उदाय तप समता त्याग । दया सौच बल नवति विराग ॥
 सुमरन ईश्वर ता चतुराई । मन उत्साह तेज नरमाई ॥
 तन बलभाग रूढा धीरता । थिरता सरधा जस गंभीरता ॥
 दांटा निरहंकार सूरता । इंद्रियन में नेपुन्य पूरता ॥
 सम सो साल पूज्यता ग्यान । बहुरो दस स्वतंत्रता जानि ॥
 ये गुन और आदि गुन जिते । हरि में नित्त विराजति तिते ॥

जो कोऊ साधु हुवा अब चाहै । इन गुन को नितही अवगाहै ॥
 श्रीनिवास गुन खान जु आहि । एको गुन छोड़त नही ताहि ॥
 जा हरि ते तेरे पग चार । रहत जनन सुख देन अपार ॥
 अहो धर्म यह लोक जु सवै । रहित भयो ता हरि विन अवै ॥
 पाप रूप गयो कलिजुग छाया । ताको सोच करत अब हाय ॥
 हे देह उत्तम देव पितर मुनि । साधु वरन आश्रम समेत पुनि ॥
 आप सहित तुम को मैं भारी । सोचति वानी सुनो हमारी ॥
 उत्तम करत है जिनकी सेवा । ऐसे ब्रह्मादिक जे देवा ॥
 ते लछमी के अवलोकनि को । बहुत काल सेवत भए वन को ॥
 सो लछमी तजि के अपनो घर । सेवत हरि के पद अतिसै करि ॥
 अंकुस कुलस धुजा अंवुज दर । इनसों ते सोहत अति सै करि ॥
 तिन चरनन करि भूषित भई । ताते मो में अति छवि छई ॥
 ता सोभा करि त्रिभवन जोई । हमन तुच्छ करि डारो सोई ॥
 ता करि मेरे गर्व सु छए । ताते कृष्ण छोड़ अब गए ॥
 असुर वंस में नृप भए भारी । सैना सो धर छाया सु डारी ॥
 ताकर हो बोझल हूँ गई । तब ते हरि हलकी कर दई ॥
 पुनि तुम दुखी जु तीन पाव करि । तिन पावन के सुद्ध करन हरि ॥
 अपने बल करि सुभ सुखकारी । मूरत जादव कुल में धारी ॥
 प्रेम सनो चितवन अरु हांस । निपट मनोहर बचन बिलास ॥
 तिन करि गर्व अरु धीरज हरयो । सतभामादि तियन जो करयो ॥
 हरि चरननि करि अंकित हो जब । मेरे तन रोमांच होत तब ॥
 ऐसे श्री पुरुषोत्तम जौन । तिनको विरह सहारै कौन ॥
 सूत उवाचः—
 पूर्व बाहनी सरस्वती जहां । धर्म धरन संवाद करे तहां ॥
 तबही तहां परीक्षित आयो । सबने जिने राजरिप गायो ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
 बाङ्गशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-बली परीछत को कहन, बैरागहि सुख सान ।
ध्याय सत्रह में कलिहि, कहत सू दंड बखान ॥

सूत उवाच:-

तहां नृप ने इक सूद्र निहार्यौ । करि में दंड चिन्ह नृप धार्यौ ॥
बैल गाय कों मारत औसैं । अहो अनाथ मारिये जैसे ॥
कमल कंद सो बैल ऊजरयो । महां दुखी इक पाव धू जरौ ॥
पुनि ताहि सूद्र दंड करि मारे । भै करि बैल मूत्र को डारे ॥
धर्म पूरना गाय जु दीन । रोवत लटी अरु बछरा हीन ॥
छूधित हि सूद्र पाव करि मारत । ताहि परीछत भयो निहारत ॥
स्वर्न जटित रथ माहि विराजत । चढ़ो धनुष पुनि करि में राजत ॥
मेघ तुल्य गंभीर वचन कर । पूछत भयो सूद्र कों नृपवर ॥
जे जन निरबल सरन हमारी । बल करि तिनैं हतत तू भारी ॥
बली आप को मारत अहो । कौन पाप सां हम सां कहो ॥
नट ज्यों भूप भेष ले धरो । सूद्र कर्म ते सूद्र सु करौ ॥
दूर गए अर्जुन हरि जानि । निर अपराधन मारत आन ॥
हतिहो अब अपराधी तोहि । तेरो हतन उचित है मोहि ॥
एक पाव करि विचरत हो अपु । कमल कंद सो उजरो तुम वपु ॥
बैल रूप करि देत हो खेद । तुम हो कोऊ देव कहो भेद ॥
कौरव भुज आश्रै है जिनकै । तुम बिन आसू परत न तिनकै ॥
नृप को चिन्ह सूद्र यह धरे । अहो याते अब तू जिन डरै ॥
जिन रोवे माता सुखकारी । मैं हों दुष्टन को दंडधारी ॥
जास राज में नर दुख पावै । नीच लोग सब प्रजहि सतावै ॥
ता नृप मत्तहि जात है त्याग । कीर्ति आयु पपलोकरु भाग ॥
परम धर्म साई नृप को आय । जाते दुखियन को दुख जाय ॥
मैं या सूद्रहि हतिहों यातें । निरदै अरु असाधु यह जाते ॥
हे सुरभी सुत कहो तिहारे । तीन पाव किन काट सु धारे ॥

हम हरि अनुवर्त्तो नृप जोई । तो सो मम न राज में कोई ॥
अहो बैल तोहि सुख होहु याते । निर अपराध साधु तुम जाते ॥
तुमरो रूप विगारौ जानै । मम यस दुखित कोनो तानै ॥
निर अपराधहि दुख्य देय जो । मो ते सब ठां डरपत है सो ॥
ताते अहो बैल जिन तोहि । दुख दियो ताहि बतावो मोहि ॥
निर अपराधी जन जो आहि । होय निरंकुस दुख देय ताहि ॥
जो हो देव तऊ मैं तास । हरो पयेते भुज अनयास ॥
बिना आपदा ऊबट चलै । शास्त्रोचित ताहि दंडै भलै ॥
चले धर्म मैं पालै ताहि । नृप को परम धर्म यह आहि ॥
धर्म उवाच:-

पांडू वंसियन की बानी जो । सुखहि दे यह उचित अहि जो ॥
जिनके गुनन सु देखि मुरारी । किय कर्म दूतादिक भारी ॥
हे राजा हम कहे सु कहा । जाते यह दुख होत है महा ॥
ताको हम जानत हैं नाहीं । मोहे बानी बंदन माहीं ॥
जे जन ईश्वर को नही माने । ते दुख सुख आपे ते जाने ॥
कोई दैवहि कोई कर्महि मानै । कोई नर सुभाव को जानै ॥
मन बानी ते दूर जु श्री हरि । मानत है ताको कोई नर ॥
ताते हे नृप जोग्य जु आहि । बुध सो तुमही विचारो ताहि ॥
हे दुज ऐसे धर्म कही जब । मन एकाम कियो नृप ते तब ॥
बहुरा खेद छोड़ि सब दियो । पुनि नृप धर्महि बोलत भयो ॥
हे धर्मग्य धर्म ते कछौ । बैल रूप तू धर्म सु लयो ॥
जा नर्कहि जु अधर्मा पावै । तहां अधर्म सूचक हू जावै ॥
अथवा देवनि की माया गति । नर मन बानी ते सुदूर अति ॥
तप सुचि दया सत्य ये भारे । अहो धर्म हे पाय तिहारे ॥
समय कुसंग मद तन अधर्म के । तिननि हरे पद तीन धर्म के ॥
सत्य पाव अब आहि तिहारे । ताते तुम विचरत हो सारे ॥
कलिजुग महा अधर्मा आहि । कछौ चहत भूठ सो ताहि ॥

पुन या धरनी को जो भार । जब ते कृष्ण उतारो डार ॥
 तब ते हरि पद सोभा करी । तिन तैं धर भई मंगलकारी ॥
 द्विज द्रोही नृप चिन्ह ही धरिहै । सूद्र असाध भोग मोहि करिहै ॥
 ताको तू सोचत रोवत धर । भागहीन भई त्याग गए हरि ॥
 महारथी नृप धरनि धर्म जो । यो बानी करि सांत किए सो ॥
 कलि अधर्म को हेतु जु आहि । तीछन खड़ग उठायो ताहि ॥
 मारन को जु भयो नृप जबही । कलि नृप चिन्ह तजि दियो तबही ॥
 पुनि भै तैं बिह्वल ह्वै गयौ । नृप के चरनन में सिर दयो ॥
 सरनागति पालक अति वीर । दीनन पर बत्सल अति धीर ॥
 पावन माहि पर्यौ नहीं मार्यौ । पुनि हंसि कै कलि सो ऊँचचार्यौ ॥
 जे अर्जुन के जसहि धरे हो । तिनके आगै करि जोरै जो ॥
 तिनको भै कछु होय सु तांही । तू जिन रह मो देसनि मांही ॥
 हेत अधर्महि तूही आय । जब तू नृप के तन में जाय ॥
 तबही चोरी भूठ अधर्म । कलिही दुष्टता तजिबो धर्म ॥
 कपट दंभ दारिद्र आदि जे । नृप के तन में आय रहत ते ॥
 धर्म सत्य जुत देस हमारो । जग्य करै या विप्रन प्यारो ॥
 जगिन करि जजिये हरि निस दिन । तू अधर्म कारन ह्यां रहे जन ॥
 जग्य मूर्ति भगवान जु आहि । मेरे इहां पूजिये ताहि ॥
 सो हर सब को मुख विस्तरै । सबै मनोरथ पूरन करै ॥
 जड़ जंगम में राजत औसै । सब में पवन विराजत जैसे ॥
 सूत उवाचः—

औसे नृप कलि सो जब कही । कलिजुग कांप उठो तब सही ॥
 जिनसों कहत भयो कलिजुग सो । खड़ग लिए जम सो ठाढ़ो सो ॥
 हे नृप सब ठां अग्या तेरी । जहां जहां देह वसे जां मेरी ॥
 तहां तुमै तोही को देखत । कर मैं धनुष बान पुनि पेखत ॥
 धर्मनि मांहि श्रेष्ठ तुम अहो । मोहि रहन को ठोर सु कहौ ॥
 जहां हो तेरी अग्या जानि । निश्चै होय रहो सुख मान ॥

औसे कलिजुग ने भापी जब । नृपने ताहि ठौर दीनी तब ॥
 जूवा मद तिय हिंसा जहां । होत अधर्म चार विध तहां ॥
 किर कलि करी प्रार्थना जबै । नृप ने स्वर्न बतायो तबै ॥
 पांच प्रकार अधर्म जहां पुनि । वैर भूठ मदि काम रजोगुन ॥
 बहुर अधर्म प्रभाव है जाहि । पांच स्थान दिए नृप ताहि ॥
 तब कलि नृप की अग्या मानि । इन ठौरन में वसों सु आनि ॥
 जो नृप अपनो मंगल चाहै । सो न कभू इनको अवगाहै ॥
 धर्मसील जग पालक राजा । सोऊ इनसो बहु करै न काजा ॥
 तप और सौच दया ये तीन । भए बैल के पग अति छीन ॥
 ते ज्यों के त्यों करि धर को पुनि । समाधान करि पुष्ट करी मुनि ॥
 धर्म पुत्र जब बन को गयो । तब नृप को नृप-आसन दयो ॥
 नृपति परीक्षत ता आसन पर । राजत भए महा हे मुनिवर ॥
 कौरव संपति सोभित अति । महाराज रिषि राज भूमि पति ॥
 महाजसस्वी विष्णुरात जो । गजपुर में अब लों राजत सों ॥
 श्रीअभिमन्यु भूप के बालक । बड़े प्रभावी जग के पालक ॥
 ताके जग अर्थ तुम सब पुनि । दिखित भए अहो सौनक मुनि ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजाति कृते

सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय

दोहा—ध्याय अठारहि नृपति को, आप विप्र को होय ।
 तातै तिन बैराग्य दिय, ताते नुग्रह सोय ॥

सूत उवाच—

जो अस्थाम अस्त्र ते जर्यौ । मा के उदर मांहि नहीं मर्यौ ॥
 जग में अद्भुत कर्म है जिनको । हे मुनि भयो अनुग्रह तिनको ॥
 द्विज रिस करि तच्छक हि पठायो । ताते मृत्यु रूप भै आयौ ॥
 तऊ भूप नहीं मोहित भयो । हरि में जाको मन लग गयो ॥
 जब नृप सब को संग ले तज्यौ । श्रीसुकदेव सरन पुनि भज्यौ ॥

तिनते भगवत्त्व सु पायो । पाय गंग तट तन छिटकायो ॥
 जो नर हरि ही के गावै गुन । कथा रूप अमृत पीवै पुनि ॥
 हरि के चरन कमल सुमरे जो । अंतहू समे न भै पावै सो ॥
 सुत अभिमन्यु विराज्यो जो लों । कलि ने कियो प्रभाव न तो लों ॥
 हरि लोकहि तज दीनो जा दिन । छयो अधरमी कलिजुग ता दिन ॥
 सारप्राही भ्रमर समान । नृपहि न मारवौ कलिजुग जानि ॥
 मन को पुनि होत कलि मांही । पाप होत मन को पुनि नांही ॥
 कलिजुग अग्यानिन को सूर । धीरन सो डरपै रहै दूर ॥
 सावधान यह विमुधहि अैसे । नरनि माहि ल्यारी है जैसे ॥
 हे सौनक पूछी जो मोहि । सो मैं बरन सुनाई तोहि ॥
 पुन्य चरित्र परीछत को पुनि । कृष्ण कथा सो जुत बरनो मुनि ॥
 कहेवे जोग कर्म है जिनके । गुन अरु कर्म आहि जे तिनके ॥
 तिनको सुनन जोग्य है सोई । अपनो मंगल चाहै जोई ॥
 अषय ऊचु:-

हे हे सूत साध सुखकारी । बड़ी आरबल होहि तिहारी ॥
 जा ते मरनहार हम ये सब । हरि जस अमृत तिने प्यावत अत्रा ॥
 विन विसवास कर्मन मन दए । धूमा सो जु मलिन ह्वै गए ॥
 तिन हमको प्यावत रसकंद । हरिपद पंकज मधु मकरंद ॥
 हरि संगिन को इक छिन संग जो । ता समान ही स्वर्ग मोच्छ हो ॥
 ओर अहो राजादिक जिते । कैसे होय समान सु तिते ॥
 माया गुननि रहित जो आहि । सबै महंत सु सेवत ताहि ॥
 तास गुनन के अंत न लहे । सिबि विधि जोगेस्वर जे कहे ॥
 ताकी कथा मोहि अब अहो । कौन जु रसक तृप्त होय कहो ॥
 अहो मृत हरि मुख्य तिहारे । तिह जस सुनिवे चाह हमारे ॥
 साधु जाहि सेवत नित अहो । जा हरि को चारित्र अपु कहो ॥
 पाय परीछत सुक ते ग्यान । महा भगवत नृप बुधिमान ॥
 हरि के चरन महा सुख रूप । तिहीं ग्यान सो पाए भूप ॥

ता ते वह भागवत पुरान । जो सुक नृप सो कियो दखान ॥
 परम पवित्र अर्थ जहां भासै । कृष्णचंद्र के चरित्र प्रकासै ॥
 अद्भुत जोग निष्ट जो आहि । साधुन को प्रिय कहिये ताहि ॥

सूत उवाच—

अहो बरनसंकर हम सबै । सुफल जन्म धारी भए अवै ॥
 जा ते साधु नाम लेहि जा को । दुसकुल दुख्य जात रहै ताको ॥
 शक्त अनंत अरु पाप अनंत । बहु गुन ते ताहि कहत अनंत ॥
 ऐसे श्री भगवान जु आहि । सबै महंत सेवत है ताहि ॥
 जो कोऊ उनके नामहि कहै । ताको दुख कुल कहां ते रहै ॥
 हरि की सम न अधिक कोऊ आहि । ताके इतनेई गुन चाहि ॥
 रमा चरन रज सेवत जिनकी । तामें चाह तनक नहीं तिनकी ॥
 ब्रह्मादिक जु प्रारथना करै । तिनकी और नैन नदि दरे ॥
 जा जल करि विधि हरि पग धोए । गंगा रूप विराजत सो ये ॥
 संकर सहित जगत तारै सौ । हरि विन हरि समान हैगो को ॥
 धीरज वै ही रमे अनुरागै । तन में तै दृढ़ संगहि त्यागै ॥
 परमहंस पदवी पावै पुनि । हिंसा रहित सांति जहां है मुनि ॥
 अहो मुनि तुमन हमे पूछी जो । तुम सो मत समान कहिहो सों ॥
 पछी उड़े सु सक्ति समांनि । हरि लीला मैं कवि त्यां जानि ॥
 धनुष चढ़ाय एक दिन लयो । पुनि नृप वन सिकार कौ गयो ॥
 मृग के पाछे परो सु हारो । प्यासो भयो छुभित भयो भारो ॥
 तहां नृप जल को दूढ़त भयो । दूढ़त गृह समीक के गयो ॥
 बैठे देखे तहां महां मुनि । सांत रूप दृग मुदे जासु पुनि ॥
 तीन अवस्था ते कढ़ि गए । मन बुध प्रांन इंद्रि गहि लए ॥
 होय रहे उपराम महां मुनि । निर्विकार ब्रह्माहि सु पाय पुनि ॥
 सिर की जटा सबै खुल रही । तन मृग चर्म दपि रह्यो सही ॥
 नृप को कंठ सूकि अति गयो । पानी रिष पै मागत भयो ॥
 आसन भूम मधुर बानी करि । नृप सनमान कियो नहि मुनि बरि ॥

तव नृप आत्म अवग्या जानि । कोप कियो अति ही दुख मानि ॥
 छुधा प्यास करि पीड़ित भयो । द्विज पै महा क्रोध भरि गयो ॥
 नृप के मतसरता भई ऐसी । पहलै कभू भई नहीं जैसी ॥
 मग में मर्यौ सांप इक पर्यौ । नृप ने धनुष अप्र पै धर्यौ ॥
 रिष के कंठ माहि पहिरायो । पुनि नृप अपने घर को आयो ॥
 मोहि जानि रिष छत्री महा । या सो मोर प्रयोजन कहा ॥
 जानि सु मिथ्या करी समाधि । नैन मूंद इंद्रो लई सावि ॥
 ता को सुत तेजस्वी महा । लरकनि संग खेलत हो तहां ॥
 पिता कंठ नृप सर्पहि डार्यौ । सुनि के तिन तबही उच्चार्यौ ॥
 अहो दुष्ट ये भए भूमि पति । इनको धर्यौ नहीं लख्यौ पाप अति ॥
 दास देत स्वामि दुख औसै । रोटी खाय कूकरा जैसै ॥
 द्विज के द्वार पाल छत्री य । संग खानि को उचित सुक्यौ या ॥
 उपट गामिन दंड देय जो । अंतरध्यान भए अब हरि सो ॥
 तिनको दंड देत मैं अबै । मेरा बल देखो तुम सबै ॥
 यो रिष सुत कहि रिस में छए । ता सो नैन लाल हो गए ॥
 नदी कोसिकी को अचवन करि । छाड़्यौ बानी रूप वज्रवर ॥
 कुल अंगार मो पित को द्रोही । तज दीनी मरजादा जोही ॥
 दिन सातवा आज ते औहै । मो प्रेर्यौ तछक ताहि खैहै ॥
 पुनि बालक अपने घर आयो । सर्प कंठ में लखि दुख पायो ॥
 पुनि शृंगी रिष पितहि निहार । रोवत भयो कंठ को फार ॥
 बालक रुदन सुनो रिष जबही । हरे हरे दृग खोले तबही ॥
 मरौ सर्प रिष कंठ निहार्यौ । कर ते ले सो धर पै डार्यौ ॥
 पुनि मुनि सुत सो पूंछी यही । काहे तू रोवत है सही ॥
 किन कीनो अपमान तिहारो । तब वृतांत कहो तिन सारौ ॥
 नृपहि अजोग्य आप को रिष मुन । पुत्रहि भलो नाहि मान्यौ मुनि ॥
 कही रे पाप अग्य तै कियौ । अल्प दोष बड़ दंडहि दियो ॥
 हरि विभूत नरदेव जु आहि । नर की सम तू जानत ताहि ॥

जो नर दुस्तर तेजहि धरै । ता सो सबही रक्षा करै ॥
 हे निरबुद्धि प्रजा भै नासै । पुनि सबके मंगलहि प्रसासै ॥
 नृप हरि ही की मूरति लहौ । अंतरध्यान होय जब अहौ ॥
 तब तौ चौर परचुर हू जावै । तिन करि लोक नाम को पावै ॥
 रच्छक बिना भेड़ सब जैसे । ता छिन नष्ट होय जन जैसे ॥
 नरपति नष्ट होयगो जबै । धनहि लूटि लैहै तब सबै ॥
 सबही परस्पर आपहि दैहै । त्यों ही मिल करि हिंसा कैहै ॥
 पुनि बहु चोर लोक में हूहै । पसु तिय धन की चोरी कैहै ॥
 तिनते जो कुछ हूहै पाप । लगिहै हमें आपते आप ॥
 वर्णाश्रम के उचित जु आहि । कहै वेद में नीके ताहि ॥
 सो सो मुख्य धर्म है जितै । हूहै नष्ट नरनि के तितै ॥
 धन अरु विपै में चित्त लगैहै । वरन संकर कूकर ज्यौ हूहै ॥
 धर्मपाल नरपति जस धारी । पुनि राजरिषि भागवत भारी ॥
 अस्वमेव बहु मख करि लए । छुधा प्यास सो श्रमित सु भए ॥
 दीन होय मो गृह आया जो । आप पायबे को अजोग्य सो ॥
 निर अपराध दास जो आहि । कुमति बाल ने आपो ताहि ॥
 छिमा करन को सो बह पाप । हे हरि एक जोग्य हो आप ॥
 हरि भक्तन को वंचन करै । निंदा करै न पुनि आदरै ॥
 तिरस्कार करि आपहि देत । सो वे अंगीकृत करि लेत ॥
 जदिप साध समर्थो आहि । उलट आप तऊ दिहि न ताहि ॥
 औसै सुत अपराध कियो जो । ता करि जरत भयो अति रिषि सो ॥
 अपनोई अपराध विचार्यौ । नृप अपराध न नेक निहार्यौ ॥
 साधुन जो कोई दुख देत । साध तिने नहि मानि सु लेत ॥
 सो बह आहि आतमा प्यारो । सो तो सुख दुख ते है न्यारो ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजानि कृते
 अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥



उनविंश अध्याय

दोहा—अंसन ले नृप गंग तट बैठे सब जन आय ।
तहां अहै सुखदेव जु, यह उन्नीसे ध्याय ॥

सूत उवाच—

रिष पै मरो सरप धरि दियो । निंद कर्म यह नृप ने कियो ॥
सोचत नृप को मन दुख भीनो । कहै मैं नीच कर्म है कीनो ॥
गूढ़ तेज द्विज निर अपराध । तासों हमने कियो असाध ॥
ता की मैं जूँ अवग्या करी । ता ते बड़ो दुख मोहि हरी ॥
तुरत ही होहु जाय अघ जा ते । औसो मैं न करो फिर जा ते ॥
किए द्विजन को अग्नि सु अहो । मेरे धन बल राजहि दहो ॥
फिर जो औसी मति होय नांही । गाय देवता विप्रन मांही ॥
औसो करो बितवन जवही । सुनी मृत्यु तछक ते तवही ॥
सो तछक रिपपुत्र पठायो । सुनि के नृप अति हरषहि पायो ॥
जो आसक्त घरन में आहि । देत मीच वैराग सु ताहि ॥
नृप ने ढोऊ लोक तजि दए । पहिलै ही नस्वर मान सु लए ॥
नृप के हिय माहि हरि पैठै । अंसन ले गंगा तट बैठे ॥
कृष्ण चरन तुलसी रज परी । ता ते गंग बहुत छवि धरी ॥
ता कर जल पवित्र अति धरै । सबही को पवित्र सो करै ॥
मरनहार ये पुरुष जु आहि । औसो कौन न सेवै ताहि ॥
औसी भांति परीछत राजा । अंसन ले बैठे सुख काजा ॥
सब ते संग सु छोड़त भए । कृष्ण चरन हिय में धरि लए ॥
कृष्ण बिना कछु और न जाके । मुनि समूह बैठा ढिग ताके ॥
करै पवित्र त्रिलोकी जिते । अहो महानुभाव मुनि तिते ॥
सिष्यनि सहित गए सब तहां । साधु परीछत बैठे जहां ॥
आए सबै तीर्थ मिस धरै । साधु पवित्र तीर्थनि करै ॥
भारद्वाज भृग च्यवन वसिष्ठ । विस्वामित्र अंगिरा सिष्ट ॥
इंद्र प्रमद उत्थ सरद्धान । कवख अगस्त व्यास भगवान ॥

परसराम पारासर पिप्पल । रिष्टनेमि मेधातिथ देवल ॥
इधाबाहु मैत्रे नादे मुनि । अत्रिरु आश्रिषेन गौतम पुनि ॥
पुनि देवर्षि द्विजर्षि राजर्षि । आए अरुनादिक समेत सिष ॥
मिल मिल रिषि समूह सब आयो । सबै पूज नृप सीस निवार्यो ॥
सुखहि पाय बैठे सवरे मुनि । राजा ने प्रनाम कीनी पुनि ॥
हाथ जोरि मन बस करि लीनो । स्वाभिप्राय निवेदन कीनी ॥

राजोवाच—

विप्रन को पग धावन जहां । बैठन जोग नृपति ये तहां ॥
ता ते निंदक कर्म हमारो । पै तुम कियो अनुग्रह भारो ॥
ता ते अहो जिते हे नर पति । तिन में अब हम धन्य भए अति ॥
घरनि मांदि चित सदा हमारै । अरु हम पाप रूप है भारै ॥
द्विज को आप आप भगवानि । जिन वैराग दियो मोहि आनि ॥
विषयनि मांदि रंग रह्यो जोई । आप ते तांदि तुरत भै होई ॥
तुम मो को सर्नागति जानौ । गंगा हू सरनायो मानौ ॥
द्विज करि प्रेरौ तछक जोई । मोहि निरंतर खायो सोई ॥
अब मैं मन हरि माहि धरौ मुनि । तुम सब मिलि गावो हरिके गुना ॥
पुनि हरि मैं होहु प्रीति हमारी । होहु सदा सतसंग सुखकारी ॥
जा जा जोनि मांदि मैं जाऊं । तहां तहां मित्र साधु हि पाऊं ॥
नृप सब विप्रन सीस निवार्यो । यो चित में निहचै उपजायो ॥
पुनि सब राज पुत्र को दयो । उत्तर मुन्य करि बैठत भयो ॥
पूरव दिसा कुसन के मूल । आसन गंगा दच्छन कूल ॥
अनसन ले बैठे नृप जवै । स्वर्ग के माहि देवता तवै ॥
फूलन की वरपा वरपाई । श्लाघा करि दुंदुभी वजाई ॥
नृप ढिग आए है रिष जिते । श्लाघा करत भए पुनि तिते ॥
सब पै बहुत अनुग्रह जिनको । भलै भलै भयो वचन सु तिनको ॥
सुंदर कृष्ण चरित करि सानी । सब रिषि तिनसो बोले बानी ॥

हे नृप हरि अनुवर्ती तुम सब । यह तुम में न कछु अचिरज अब ॥
 तुमरे कुल में जे जे भए । तिन हरि प्राप्ति मांहि मन दए ॥
 पुन राज आसन छोड़ दिए ते । नृप मुकटनि करि सेवत है ते ॥
 महा भागवत तन छिटकाय । सो करि हित हरि के पद पाय ॥
 तब लौ हम सब इकठा रहिहे । राजा की सब लीला लहिहे ॥
 अर्थ गंभीर कपटता नाही । मधु श्रावी समता जां मांही ॥
 अस विप्रन को बचन सुन्यो जब । सीस नाय नृप बोलि उठो तब ॥
 सुंदर कृष्ण चरित जो आहि । सुनो परीच्छत चाहै ताहि ॥
 मेरे ढिग तुम हो सब असै । ब्रह्मलोक में श्रुति है जैसै ॥
 तुमरे कछु प्रयोजन नांही । बिन इक कृपा नरन के मांही ॥
 ता ते जो कछु उत्तम आहि । करि विसवास ही पूछौ ताहि ॥
 मरन द्वार को करिवै है जो । करि विचार उत्तम कहिये सो ॥
 तबही तहां व्यास सुत आए । लरकनि संग धूर में छाए ॥
 अति संतुष्ट चाह कछु नांही । विचरे सदा धरनि के मांही ॥
 रूप न जिनको जानि सकै जन । सोरह बरस मांहि सुंदर तन ॥
 कर तन चरन भुजा छवि सार । षये कपोल जांघ सुकुमार ॥
 सुंदर नैन बिसाल विराजै । कान समान महा छवि छाजै ॥
 सुंदर भृकुटी ऊंची नासा । मुख में नाना होत विलासा ॥
 तीन रेख ग्रीव में ऐसी । सोभा भरी संख में जैसी ॥
 भर्यौ कंठ को नीचो सोहै । पुष्ट तुंग उर मन को मोहै ॥
 अति गंभीर नाभि छवि छाजै । त्रिवली सुंदर उदर विराजै ॥
 दिसही जिनके अंबर सोहै । खुले कुटिल कुंतल मन मोहै ॥
 लांबी भुजा महा अभिराम । मानो सुंदर है घन स्याम ॥
 अति ही सुंदर तन छवि छाजै । मंद मंद मुसिक्यान विराजै ॥
 तिन करि सुंदर तिय मन हरै । गूढ़ तेज नहिं जानै परै ॥
 श्रीसुक को देखत भए जिते । आसन तजि सनमुख भए तिते ॥

अतिथ रूप श्रीसुक गए आय । नृपने पूजे सीस निवाय ॥
 नृप ने श्रीसुक को पूजै जब । ऊचे आसन पर बैठै तब ॥
 मूढ़ बाल तिय संग है जिते । आचिरज देखि भाज गए तिते ॥
 द्विज रिप सुर रिप नृप रिष ढेर । बैठे श्रीसुकदेवहि घेर ॥
 श्रीसुक सोभित तब भए असै । तारन मांहि चंद्रमा जैसै ॥
 सांत बिलास बुद्धि है जिनकी । आसन पै सोभा भई तिनकी ॥
 महाभागवत महाराज जो । पावन मांही जाय परो सो ॥
 हाथ जोर पुनि मधुरी बानी । बोल्यो श्रीसुक को सुखदानी ॥
 भए साधु सेवी हम आज । महा धन्य हे मुनि महाराज ॥
 कृपा करी तुम आप पवारे । तुम करि हम पवित्र भए सारे ॥
 साधु जनन को सुमरन है जो । करै नरन को घर पवित्र सों ॥
 जो जन इनको आसन देय । पांए धोय चरनामृत लेय ॥
 मिलि करि तिनको दरसन करै । ता को भाग कौन उच्चरै ॥
 तुम आए जु हमरे पास । हमरे बड़े पाप भए नास ॥
 जैसैं हरि जय ही ढिग आवै । तबही असुर नास को पावै ॥
 कृष्ण पांडवनि के प्रिय भारे । फूरी के वेदा अति प्यारे ॥
 तिनके वंश मांहि मोहि जानि । मो पै कृपा करी तुम आनि ॥
 गति नहीं जानी जात तिहारी । नर दुल्लभ तुव दरसन भारी ॥
 अति दुल्लभ तुव दरसन ता को । मरनों आए प्राप्त भयो जा को ॥
 तुम सब के गुरु सिधि के दाता । मैं तुम सों पूछत इक वाता ॥
 मरनद्वार जो प्राप्ति आहि । करिवे जोग कहा मुनि ताहि ॥
 कहा जपैरु सुनै कहा करै । कहा भजै किह ध्यानहि धरै ॥
 जा जा को निषेद तुम अहो । सोई सो प्रभु सो सो कहों ॥
 गो दोहन लगि रहो न तहां । आधि गृहस्थन के घर जहां ॥
 सूत उवाच—
 सुंदर बानी सों यो राजा । पूछी श्रीसुक को सुख काजा ॥

व्यास पुत्र तब बोलत भए । अति धमग्य महा छवि छए ॥
 दोहा—श्री प्रियादास रस रास की, पाय कृपा रसजानि ।
 अगम कियो निपटै सुगम, प्रथम स्कंध बखानि ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषा रसजाति कृते
 परीक्षितानुवर्तनो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



द्वितीय स्कंधः

प्रथम अध्याय

दोहा—रसिक भूप हरि रूप पुनि, श्री चैतन्य सरूप ।
 हृदै कूप अनुरूप रस, उभल्यौ बहै अनूप ॥
 श्रवन कीर्तनादिकनि करि, स्थूल रूप भगवान ।
 तामें मन ठहरात है, प्रथम ध्याय यह जान ॥

शुक उवाच—

हे नृप प्रश्न श्रेष्ठ है भारी । सकल लोक कौ मंगलकारी ॥
 ग्यानवान के संमत है पुनि । सुनिवे की लायक तातैं मुनि ॥
 जो नर आत्म तत्व नहि जानैं । घर में अति आसक्तिहि ठानैं ॥
 हे नृप तिने हजारनि वात । सुनिवे जोग आहि विख्यात ॥
 नींद रात की आयुहि हरे । कछु आयु छै तिय संग करै ॥
 दिन की आयु उदिम तै जाय । कुटुंब भरन तैं कछु नसाय ॥
 तन सुत तिय परिकर हैं जितौ । यह नर नष्ट लहत है तितौ ॥
 तऊ मन नैकु न आवत यातैं । अति आसक्त हूँ रह्यौ जातैं ॥
 सर्वात्म ईश्वर जो आहि । हे नृप जो नर चाहै ताहि ॥
 सो नर हरि सुमरन मन लावै । हरि कौ सुनेरु हरि कौ गावै ॥
 निज सुधर्म की निष्ठा करि जो । सांख्य जोग करि कै दूजै हो ॥
 अंत काल में हरि को ध्यान । नर को जनम लाभ सोई जानि ॥
 हे नृप बहुतक मुनि जे आय । बिधि निषेध मारग छिटकाय ॥
 निरगुन माहि सदा रति जिनकी । हरि गुन कथन माहि मति तिनकी ॥
 हे नृप यह भागवत पुरान । सब बेदनि की आहि समान ॥
 हे नृप द्वापर जब ही भयौ । व्यास पिता तैं तब पठि लयौ ॥
 मोर ब्रह्म में निष्ठा भारी । हरि की ये लीला सुखकारी ॥
 तिननि खेच मेरौ मन लयौ । तब मैं याहि पढ़त नृप भयौ ॥
 हे नृप तोहि कहौ मैं यातैं । हरि के भक्त आहि तुम जातैं ॥

द्वितीय स्कंधः

६०

याहि सुनन में सरधा जाकी । हरि में तुरत लगै मति ताकी ॥
ग्यानी कामी मुक्ति ईछुक जो । हरि के नामनि कौं गावै सो ॥
अहो विमुध नर जीवै महा । तौ ता के जीवे करि कहा ॥
हो हूँ घरी बहुत है ता की । भलौ करन में मति है जा की ॥
इक खटांग नाम नृप भयौ । अपनौ जिन जीवन लखि लयौ ॥
जान मु तव ही सब छिटकायौ । भै करि रहित हरिहि तिन पायौ ॥
हे नृप तू जिन डरपै या तैं । सात दिवस तुव आयु है जातैं ॥
तव लौं सिध करौ तुम सोई । उचित आहि परलोकहि जोई ॥
अंतकाल जब नर कौ आवै । तव नर अति निर्भै हूँ जावै ॥
तन सनत्रंघिन सौ जु नेह जो । लै वैराग्य सस्त्र काटै सो ॥
धीर होय घर कौ तजि जावै । पुन्य तीरथनि के जल न्हावै ॥
सुध इकांत ठौर जो होई । आसन करि बैठे तहा सोई ॥
सुध अछरी ओंकार जो । मन करि ताकौ जाप करै सो ॥
ओंकार कौ कभु न विसारै । जीत स्वास मन बस करि डारै ॥
बुधि सारथी जा कौ सो नर । खैचि विषै तैं इंद्रिनि मन कर ॥
कर्मनि करि विछिप्र मन जोई । हरि में बुधि सौ राखै सोई ॥
चित इकाग्र करि हरि में लावै । एक एक अंगनि कौ ध्यावै ॥
विषै रहित मन हरि में लावै । तिन बिन कछु न और मन ल्यावै ॥
हरि कौ परम रूप है सोई । जामैं मन प्रसन्न अति होई ॥
रज तम करि विछिप्र मूढ़ जो । रोकि धारना सो लेय मन सो ॥
गुननि को करी मलिनता जितनी । दूर करै सु धारना तितनी ॥
मंगल रूप आश्रै हरि जो । जोगी लखै धारना तैं सो ॥
तिनकौ जोग सिध होय तिह छन । जा जु जोग कौ भक्ति है लछन ॥

राजोवाच—

अहो धारना का की करै । अरु कहौ ज्यौ सु धारना धरै ॥
जा धारन तैं मन मल जाय । सो मुनि मो सौं कहौ सुनाय ॥

द्वितीय स्कंधः

६१

श्रीशुक उवाच—

संगनि जीतरु जीतै आसन । इंद्रिनि जीतरु जीतै स्वासन ॥
स्थूल रूप हरि कौ जो आय । बुधि सौं मन तहा देय लगाय ॥
हरि कौ तन विराट है जोई । सब बड़ेन कौ वडौ सु होई ॥
ता में विश्व देखियत है सो । भूत भविष्यत वर्तमान जो ॥
यह ब्रह्मांड सरीर बिराजै । सात आवरन जुत सो राजै ॥
ता में पुरष विराट सु जोई । धारना आश्रै जानौ सोई ॥
हरि तरवा पातालहि जानौ । एड़ी अंगुली रसातल मानौ ॥
हरि के टकने हैं जु महातल । ताकी पिंडरी आहि तलातल ॥
सुतल सु ता के घोटु जानौ । अतल दितल दोऊ ऊरु मानौ ॥
हे नृप जंघन महीतल ता कौ । नाभि नभ स्थल राजत जाकौ ॥
स्वर्ग लोक ता कौ उर मानौ । महर्लोक पुनि ग्रीवा जानौ ॥
वदन आहि जन लोक सु ता कौ । अरु लिलाट तप लोक है वाकौ ॥
सत्य लोक पुनि मस्तक जानौ । हरि के कर इंद्रादिक मानौ ॥
दिसा आय नृप कर्न सु जा के । सद्य ही आय श्रवन पुन ता के ॥
अश्वती कुमार जु नासा जा की । गंध घ्रान इंद्री है जाकी ॥
ज्वलत अग्नि हरि मुख ही मानौ । अंतरीक्ष पुन नेत्रनि जानौ ॥
सुर्य चक्षु इंद्री है जा की । पलक परन दिन रात है ता की ॥
ब्रह्मलोक पुनि भृकुटी जानौ । जल तालह रस जिह्वा मानौ ॥
ब्रह्मरंध्र नृप वेद है ता के । जम ही डाढ़ बिराजत जा के ॥
सृष्टि सु हौन कटाछहि जानौ । नेह रूप तिह दात सु मानौ ॥
जननि देत उन्मत्तता जोई । हरि कौ हास है माया सोई ॥
लज्जा होठरु अधर लोभ गनि । पीठ अधर्म धर्म है अस्तन ॥
लिंगही आहि विधाता है जो । मित्रावरन है अंड कौस जो ॥
कुक्ष समुद्र अस्थि गिरि जिते । नाडी नदी रोम द्रुम तिते ॥
पवन स्वास पुन काल है चाल । हे नृप यह संसार जु ख्याल ॥
मेघ रूप केसनि करि राजै । संध्या रूप ही बस्त्र बिराजै ॥

माया हृदै रूप है ता कौ । विकृति प्रेह ससि मन है जा कौ ॥
 महत्त्व चित ही कौ मानौ । अहंकार सिवही कौ जानौ ॥
 स्वचर अस्व ऋट गिरि जिते । ता हरि के नृप नख है तिते ॥
 सब पसु आदि नितंब सु ताकौ । खग ही सुभ व्याकरन है वाकौ ॥
 बुद्धि स्वयंभूमनु पुनि मानौ । सब नर तास निवास सु जानौ ॥
 चारन विद्याधर गंधर्व । अप्सर ये हरि के स्वर सर्व ॥
 असुर समूह पराक्रम जा कौ । ब्राह्मन आदि वदन पुनि ता कौ ॥
 छत्री भुजा वैश्य जंवा पुनि । कृष्ण वरन सोई सूद्र चरन सुनि ॥
 बहुत दं बहु होम है जा कौ । औसा जग्य कर्म है ता कौ ॥
 विस्व रूप हरि की रचना जो । हे नृप वरन सुनाई मैं सो ॥
 बुधि सौ मन जु थूल में धरै । हे नृप कछु न या तैं परै ॥
 एक सर्व आत्म हरि जोई । सवन की बुधि वृत्ति करि सोई ॥
 अनुभव करि लीनों सब औसैं । स्वप्न में जीव बहुत हूँ जैसे ॥
 सत्यानंद रूप हरि आदि । हे नृप सदा भजै नर ताहि ॥
 और ठौर पुन मन नहि लावै । जो लावै तौ जगताहि पावै ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय

दोहा--थूल धारना तें जु मन, जीत दूसरे ध्याय ।

साछी सर्वेसुर हरी, ता में देय लगाय ॥

शुक उवाच-

निश्चै बुधि सुफल है ग्यान । औसौ नृप जो ब्रह्मा आन ॥
 तिन लै यहै धारना धरी । नष्ट ग्यान तब दीनौ हरी ॥
 तबविधि जगत सृजत भयौ औसौ । हे नृप पहल हुतौ जग जैसे ॥
 नरनि असार मार्ग जो कहै । वेद को सु है मारग यहै ॥
 ता मायामय मारग भीतर । बंधे चाह सो भ्रमत सबै नर ॥
 भ्रमै सुपन सौ देखत तहां । कोऊ अर्थ नहि पावै जहां ॥

जन नर बुधि में निश्चै कीनौ । पुन सो सावधान है लीनौ ॥
 सो नर तन निर्वाहे जितनौ । भोग करै अंगीकृत तितनौ ॥
 अनायास जो आनहि परै । भ्रमहि जान पुन जतन न करै ॥
 पृथ्वी रूप सेज यह राजै । भुजा रूप तकिया छवि छाजै ॥
 अंजुलि रूप पात्र ये तेरे । दिसा बकुल अंबर बहुतेरे ॥
 चीर कहा नाहिन मग मांही । भिच्छा वृद्ध देत कहा नाही ॥
 अहो नदी कहा सूकत भई । कहा गिरि गुहा रुकि पुनि गई ॥
 जे नर हरि की सरनहि धरै । कहा हरि तिनकी न रच्छा करै ॥
 धन करि जो नर अंग सु आदि । काहे भजत विवेकी ताहि ॥
 आत्मा प्रिय भगवान हैं जोई । आप ते तब हिय आए सोई ॥
 ताहि भजै पुन सब छिटकावै । भजे सु यह जग नासहि पावै ॥
 पसु विन औसौ हैगौ कौन । तजि हरि औरहि भजै सु जौन ॥
 सो नर बैतरनी में परै । जिन पापनि कौ अनुभव करै ॥
 कोई तरे जु धारना धारे । हिये मांहि इक पुरुष निहारे ॥
 जिनके चार भुजा छवि छाजे । चक्र गदाधर कमल विराजे ॥
 कमलनेन पीतांबर धारी । रतनन के बाजू सुखकारी ॥
 मुख प्रसन्न श्री रेखा राजै । कुंडल मुकुटनि में छवि छाजै ॥
 फूल्यो एक कमल हिय जोई । ता पर राजत हैं हरि सोई ॥
 कौस्तुभ मनि जु कंठ में राजै । पुनि डहडही वनमाल विराजै ॥
 छुद्र घंटिका नूपुर सोहे । मुदरी खंडुवा मन कौ मोहै ॥
 स्याम स चिक्कन लट घुंघरारी । हस्त वदन पर लसत है भारी ॥
 अति लीला करि हसनि सुहाई । अवलोकन तब अति छवि पाई ॥
 पुन ता में भृकुटनि बचावै । भृकुटि नचाय सु कृपा जनावै ॥
 या हरि कौ ध्यावै सौ तौ लौ । धारन करि मन थिर होय जौ लौ ॥
 एक एक अंगिन को ध्यावै । पद ते लै मुसिकनि लों जावै ॥
 करि करि ध्यान अंगिन को तजै । पुन ऊपर ले अंगिन भजै ॥
 बुधि की होय सुधता जैसे । हरि कौ ध्यान करै सो तैसे ॥

द्वितीय स्कंधः

६४

हरि में भक्ति होय नहि जब लौ । थूल रूप नर सुमिरै तब लौ ॥
पुनि सब कर्मन हू को करै । अरु मन की इकाग्रता धरै ॥
जोगी जो तन ओढ्यौ चाहै । देस काल नहि मन अवगाहै ॥
सुख सो दृढ़ आसन बैठै सो । प्राण जीत इन्द्रिय रोक्के हो ॥
निर्मल बुधि सो मनहि हाथ करि । सो बुधि लै सु जीव में दे धरि ॥
जीवहि लै आत्मा में धरै । आत्मा परमात्मा में करै ॥
तब सुधीर आनंदहि पावै । अरु पुन सबै क्रिया छिटकावै ॥
देवनि को प्रभु काल न जहा । जगत ईस तहां देव सु कहा ॥
सतरज तम न तहा तीनौ गुन । महत्तत्त्व माया हंकार पुन ॥
हरि में आहि सुहृदता तिनकी । गई अहंता ममता जिनकी ॥
हरि के चरन हिये में धरै । असुध वस्तु को त्याग सु करै ॥
हरि को परम स्थान जो आहि । ते सब साधु बतावत ताहि ॥
भयौ शास्त्र ते ग्यान सु जा के । नष्ट वासना ह्वै गई ता के ॥
परमात्मा में थित होय जोई । ह्वै उग्राम अहो मुनि सोई ॥
एड़ी गुदा के द्वार लगावै । पवन सात चक्रनि में ल्यावै ॥
नाभि सु लाय दृढ़ै में लावै । उर सु ल्याय तालू ठहरावै ॥
भृकुटिन के मध्य ल्यावै जबै । सातो द्वार रोकि लेय तवै ॥
एक मुहूर्त तहां ठहरावै । मन लै कृष्णचंद्र में लावै ॥
ब्रह्मरंध्र को फोरै जोई । पार ब्रह्म को पावै सोई ॥
ब्रह्मलोक जो देख्यौ चाहै । सुरनि की संपति मन अवगाहै ॥
अष्टसिंधि अनिमादिक जहां । तौ मन इन्द्रिय लै जाय तहां ॥
विद्या तप अरु जोग समाधि । हे नृप ये जिन लीनो साधि ॥
पावन मांदि लिंग देही जिनकी । हे मुनि बाहर हू गति तिनकी ॥
सो जोगी जा गति को जावै । कर्मी करि न कर्म ताहि पावै ॥
त्याग मलिनता ऊज्ज्वल होई । प्रथम अकास जाय के सोई ॥
ब्रह्मलोक मग माहि जाय सो । नाडी सुषुम्ना तेजोमय जो ॥
ता करि अग्नि लोक को जावै । पुन सिसुमार चक्र को आवै ॥

द्वितीय स्कंधः

६५

जगत नाभि हरि चक्र जु आहि । ताहू को जोगी तजि जाहि ॥
सूक्ष्म निर्मल एक लिंग तन । ता करि महर्लोक जाय सो जन ॥
दीर्घ आयु भृग्वादिक जहां । और न कोऊ पहुँचै तहां ॥
पुन असंत मुख अग्नि सु जवै । जारै विस्वहि योगी तवै ॥
जाय जु ब्रह्म लोक है जहां । सिधनि के निमान बहु तहां ॥
द्वै परार्थ की आयु सु ता में । साक बुढ़ापौ मृत्यु न जा में ॥
आर्त्ति और उद्वेग न जहां । मन की पीड़ा न व्यापै तहां ॥
जन्म मरन विमुखनि को जाई । देवि कृपालनि को दुख होई ॥
पहले धर आवरन जु आवै । निभै ह्वै धर वपु तब जावै ॥
जलावरन में जल होई सोई । तेज आवरन तेजसु होई ॥
पवन में पवन होइ सो जावै । व्यापक नभ में नभ ह्वै छावै ॥
घान सो गंधरु रसना सो रस । दृष्टि सो रूप तुचा सो सपरस ॥
श्रवणनि सो सु सवद को सोई । अंसें प्राप्ति होई करि जोई ॥
पुन कर्मेन्द्रिय सहित सु सोई । तिन तिन की करि या गहै जोई ॥
पंच है महाभूत पुन जोई । और पंच तन्मात्रा तेई ॥
दस इंद्रिय मन देव सु जिते । लीन होय हंकार में तिते ॥
ता में जोगी जाय समाय । ता जुत महत्तत्त्व में जाय ॥
पुन सब गुन को लय है जा में । सो जागी जाय ता माया में ॥
माया रूप होय जाय जवै । आनंद रूप होय करि तवै ॥
आनन्दमय परमात्मा जोई । ता को प्राप्ति हाय है सोई ॥
हे नृप जो या गति सौ जावै । सो न फेर जग मांही आवै ॥
ये द्वै मार्ग वेद ने गाए । हैं अनादि में तोहि सुनाए ॥
ब्रह्मा ने हरि पूजे जवै । श्रीभगवान कहे ये तवै ॥
सुख मारग नहि और है यातें । हरि में भाक्त होय है जातें ॥
विधि न मन एकाग्र करि धार्यो । तीन बेरि तिन वेद विचार्यो ॥
बुद्धि ते निश्चै कीनो सोई । जा ते प्रीति कृष्ण में होई ॥
अंतर्यामी रूप करि श्री हरि । लखियत हैं सब जंतुनि भीतर ॥

द्रष्टा हरिं दृश्य बुध्यादिक । पुन तेई लछन अनुमायक ॥
ता ते' मुक्ति हि चाहै जोई । सब ठां मदा सबै विध सोई ॥
हे राजन हरि ही कों गावै । हहि कों सुनैरु हरि मन लावै ॥
साधुनि के हरि आत्मा आहि । जो नर श्रवन भरि सुनै ताहि ॥
सो चित अति पवित्र करि डारै । हरि चरनन के निकट पधारै ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

दोहा—भक्ति श्रेष्ठता कहत श्री सूत तीसरे ध्याय ।

सुनि सौनक हरि गुननि में, करी प्रीति चित लाय ॥

शुक उवाच—

नरनि में बुधिमान जो आहि । मरन हार करिबे जो ताहि ॥
हे नृप तौहि सुनायौ सोई । मो सैं ते' पूछौ है जोई ॥
ब्रह्मतेज को चाहै जोई । ब्रह्मा जू को पूजै सोई ॥
जो कोई इन्द्रिन को दृढ़ चाहै । इन्द्र सु पूजन सो अवगाहै ॥
अरु संतानहि चाहै जोई । दच्छ प्रजापति पूजै सोई ॥
वैभव चाहै दुर्गाहि जजै । तेजहि चाहै अग्निहि भजै ॥
भजै वसुनि जो धन कों चाहै । रुद्रनि भजै प्रभाव अवगाहै ॥
अन्नहि चाहै आदितिहि जजै । स्वर्गहि चहै सुरनि को भजै ॥
राज्यकाम सो मनु पतिनि को । प्रजा वस चाहै सो साध्यनि को ॥
आयु दीर्घ को चाहै जोई । अश्विनीकुमार भजै नृप सोई ॥
चहै पुष्टता सो धर भजै । चाहै रूप गंधर्वनि जजै ॥
बहुर प्रतिष्ठा चाहै जोई । धर अकासहि पूजै सोई ॥
तिय चाहै सु उर्वसी भजै । जस चाहै सो हरि कों जजै ॥
सब ते' श्रेष्ठ हुवौ चहै जोई । ब्रह्मा जू को पूजै सोई ॥
जो जन धन कों जोरयो चाहै । वरुन सु पूजन सो अवगाहै ॥
धर्म चहै तो विष्णुहि जजै । विद्या चहै सु सिव को भजै ॥

तिय सो प्रीति चहै नृप जोई । भजै भवानी को नर सोई ॥
वंस बढ़ायौ चाहै जो पै । पितरनि को पूजै नर तौ पै ॥
निर्मैता चाहै पुन जोई । पुन्य जनन कों पूजै सोई ॥
नृप को मंत्री हुवौ चहै जो । विस्वेदेवनि कों पूजै सो ॥
जो काहू को मारयो चाहै । मृत्यु सु पूजन तौ अवगाहै ॥
काम की आहि कामना जो पै । जजै चंद्रमा को नर तौ पै ॥
पुन बैराग्यहि चाहै जोई । सुंदर हरि को पूजै सोई ॥
होय सकाम किवा निष्काम । अथवा जास मुक्ति सो काम ॥
सो नर परम पुरुष को जजै । तीव्र भक्ति करि ता हिय भजै ॥
हरि के पूजन में मन ता को । परम लाभ इतनौई ता को ॥
हरि भक्तनि को संग जु पाय । हरि में गाढ़ भाव हूँ जाय ॥
असौ को जु हरि कथा मांदि । हे नृप करै प्रीति कों नाहि ॥
जा जु कथा में मन सुख पावै । सुखनि माहि ते' पुन ऊठि जावै ॥
पुन नृप भक्ति योग होय सोई । मुक्ति के संमत मारग जोई ॥
गुन प्रभाव जा ते नसि जावै । असौ तवै ग्यान होय आवै ॥
शौनक उवाच—

यह सुनि नृप ने पूछ्यौ जोई । अहो सूत हम सों कहु सोई ॥
साधु सभा में होय हरिकथा । जिन कथानि को फलौ हरि कथा ॥
सो हम सुन्यौ चहत हैं सबै । कहन जोग तुम हमको । अवै ॥
महारथीरु भागवत महा । पांडव वंसी कहियै कहा ॥
बालक समे खिलोना जिते । घंटा संखादिक किये तिते ॥
व्यास पुत्र श्रीसुक हे जोई । कृष्ण चरित्र मगन पुन सोई ॥
तिन हरि गुन कहे हूँ जहा । बहुत भागवत बैठे तहा ॥
उदै अस्त रवि होत है ज्यौ ज्यौ । नरनि की आयु सु काटत त्यों त्यों ॥
हरि कथानि में बीती जो छिन । ता की काटि सकै नहि सो जिन ॥
बृच्छ कहा जीवत है नार्हा । स्वास न कहा धोकिनी माहीं ॥
बिषै करेंरु उदर जो भरें । सूकर कूकर हूँ सो करें ॥

द्वितीय स्कंधः

६८

जो नर के कर्ननि के माही । हरि कौ नाम गयौ कभुं नाही ॥
खर कूकर सूकर हैं जिते । ता की स्तुति करत हैं तिते ॥
हरि गुन श्रवन सुने नहि जेई । सांपनि के जु विले हैं तेई ॥
जो जिह्वा हरि गुन नहि गावै । सो जिह्वा मेंडुकी कहावै ॥
मुकट सहित सिर हरि हि ननयौ । तौ सब जनौ बोझ धरि दयौ ॥
हरि सेवा कर करै न जो पै । कंकन सहित मृतक कर तौ पै ॥
हरि सरूप निरखे नहि दृग जे । पाँख मोर की सी राजत ते ॥
अहौ सूत द्रुम चरन हैं तेई । जात नही हरि तीरथ जेई ॥
साधु चरन रज लेत न जोई । जीवत ही मृत्यु कहै सोई ॥
तुलसी गंध लेत नहि जेई । मरे मरे स्वास लेत हैं तेई ॥
कहत सुनत हरिनाम न जोई । दृगनि ते जल नहि डारै सोई ।
पुन रोमांच होत नहि जा के । लोह सो अति कठोर हिय ता के ॥
आत्मग्यान में निपुनि परीछत । पूछ्यौ श्रीसुक कौ सबही अति ॥
सो तुम हमसो सबै बखानौ । हमरे मन अनुकूल सु जानौ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

दोहा—हरि सृष्टादिक कर्म नृप पूछे चौथें ध्याय ।

विधि नारद संवाद करि कहे सुकदेव सुनाय ॥

सूत उवाच—

श्री सुकदेव वचन जो कह्यौ । आत्म तत्त्व निश्चै जहा लख्यौ ॥
सोई वचन सुनि नृपति परीछति । सुंदर हरि में धर दीनौ मति ॥
देह पुत्र स्त्री धन धाम । गज घोराक बंधु अभिराम ॥
अरु निष्कण्टक राज्य माहि पुन । दृढ़ ममता तजि दई अहो मुनि ॥
हरि गुन श्रवन सु श्रधा भारी । अति उदार नृप अति सुखकारी ॥
श्रीसुक कौ पूछी तिन सोई । अहो साधु तुम पूछ्यौ जाई ॥
अपनौ अंत जान नृप लयौ । धर्म अर्थ कामहि तजि दयौ ॥

द्वितीय स्कंधः

६९

हरि में गाढ़ भाव है गयौ । पुन नृप सुक सो पूछत भयौ ॥
राजोवाच—

हे सर्वग्य अनघ सुखकारी । कहत हरि कथा सुंदर भारी ॥
अति सुंदर पुन वचन तिहारौ । नास कियौ अग्यान हमारौ ॥
अपनी माया करिके श्रीहरि । जैसे विस्व सृजत हैं मुनिवर ॥
ब्रह्मादिक कौ है अतर्क जो । तुममें मैं जान्यौ चाहौ सो ॥
बहुत सक्ति भगवान जु धरैं । का का सक्ति हि आश्रै करै ॥
जैसे या विस्वहि पालें मुनि । अरु संहार करें जैसे पुनि ॥
अपनी क्रीड़ा हित कौ सोई । बहुत रूप ब्रह्मादिक होई ॥
अद्भुत कर्मा कौ लीला जे । बड़ड़े कबिन हू करि अतर्क ते ॥
माया के जु गुननि कौ श्रीहरि । एक बेर अथवा मुनि क्रम करि ॥
ग्रहन करे अवतारनि धरे । जैसे पुन कर्मनि कौ करें ॥
यह संदेह हमारे आदि । हे मुनि दूर करौ तुम ताहि ॥
सन्द ब्रह्म परब्रह्म जु आदि । नीकै तुम जानत हो ताहि ॥
सूतोवाच—

हरि गुन श्रवन करन के काजा । सुक सों करी प्रार्थना राजा ॥
तब श्रीसुक मन हरि में दियौ । कहिवे कौ प्रारंभ सु कियौ ॥
शुक उवाच—
उत्पति पालन प्रले हेत हरि । तीन रूप ब्रह्मादि त्रिप धरि ॥
लखि न सकै कौऊ मारग जिनकौ । अति ही आदि प्रभाव सु तिनकौ ॥
अंतर्हामी ईश्वर आदि । मेरे नमस्कार है ताहि ॥
साधुनि के जो क्लेश निवारै । दंड असाधुनि कौ पुनि धारै ॥
ग्यान माहि पुनि थिति है जिनकी । इच्छा पूरन करत है तिनकी ॥
सत्त्व मूर्ति ईश्वर जो आदि । मेरे नमस्कार है ताहि ॥
दूर असाधुनि कौ मारग जा कौ । सुख रूप में रमन सु ता कौ ॥
बड़ी आदि ईश्वरता जिनकी । कोऊ नाहि समान है तिनकी ॥
साधुनि माहि श्रेष्ठ जो आदि । मेरे नमस्कार है ताहि ॥

जा को पूजन भवन विलोकनि । स्मर्न कीर्तन अरु पुन वंदन ॥
 नरनि के पाप दूर करि डारे । सुक ताहि नमौ नमौ उच्चारै ॥
 साधु जास पद में मन लावै । पुन सब संग तिनको छिटकावै ॥
 बहुर जास के निकट पवारै । हम ताहि नमौ नमौ उच्चारै ॥
 धर्म निष्ठ दातारु तपस्वी । ग्यानी मनस्वी और जसस्वी ॥
 जिह अर्पन बिन सुख नहि लहे । ता औ नमो नमो हम कहें ॥
 खसिया हून किरात पुलिंद । कंक गवन आभीरु अंध ॥
 पुलकस आदि नीच जे आय । हरिभक्तनहि नवें जव जाय ॥
 तब ही सुध होत है सबै । ता हरि को दंडौत है अवै ॥
 ग्यानवान के आत्मा जोई । बेद धर्म तप रूप हैं ओई ॥
 ब्रह्मा सिव निष्कपट जु आदि । जानन जोग आप ये ताहि ॥
 पुन सब के ईश्वर हरि जोई । मो पर नित प्रसन्न होहु सोई ॥
 लक्ष्मीपतिरु जग्यपति धीपति । धरपति लोकपतीस प्रजापति ॥
 जादव पति साधुन की गति सो । होहु प्रसन्न हमारे पर जौ ॥
 हरि पद ध्यान बिबेकी धरे । ता कर बुधिहि उज्ज्वल करे ॥
 सुंदर आत्मा तब देखे ते । मो पर होहु प्रसन्न सु हरि वे ॥
 विधि हिय सुच्छम बानी जोई । पहलै हरि पढ़ाय दई सोई ॥
 विधि मुख में ते प्रगट भई जो । होहु प्रसन्न मेरे पर हरि सो ॥
 पंच महाभूतनि करि जो हरि । सृजत भए यह देह रूप घर ॥
 अंतर्ग्रामी होय बसे पुनि । करत प्रकास जिते षोडस गुन ॥
 सो हरि करौ अलंकृत सो सो । मैं यह कहत हों बानी जो जो ॥
 कमल व्यास जू को मुख मानौ । यह पुरान आसब तिह जानौ ॥
 साधु ही ता को पान सु करें । व्यास चरन पर सिर हम धरें ॥
 हे नृप यह वृतांत है जोई । नारद विधि सो पूछ्यौ सोई ॥
 नारद सों विधि कहन लग्यौ सौ । नारायन सौ सुन्यौ हुतौ जौ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ध्याय पांचए सृष्टादिक जे । नारद पूछे विधि सु कहे ते ॥
 विराट सृष्टि हरि फीला वही । काल कर्म सक्तिनि जुत जुही ॥
 नारद उवाच —

देव देव तुम पहले सब के । पुन उपजावनहार ही सब के ॥
 आत्म तत्व दर्शन होय जा करि । हम सो ग्यान कहो सो मुनिवर ॥
 जिन करि जगत प्रकासहि पायौ । जिन के आश्रये जिन उपजायो ॥
 जा में लीनरु जास अधीन । ता को तत्व कहो प्रवीन ॥
 भूत भविष्यत वर्तमान जो । तुम नीकै सध जानत हो सो ॥
 ग्यान सो बिस्व विचारयो ऐसैं । हाथ में आहि आवरो जैसैं ॥
 को नें तुमै दियो विग्यान । कोनरु तुमको आश्रये आन ॥
 किह आधीन तुम का कै रूप । या को हम सो कहो सरूप ॥
 कोऊ न प्रभाव करै तिहारौ । इक ही तुम जु बहुत वपु धारौ ॥
 आपही अपनी ही माया धरि । पालत सृजत भूत भूतनि करि ॥
 आपन सक्ति सोमकरी जैसैं । रचि जालो पुन खेलत तैसैं ॥
 ता ते हे प्रभु ईश्वर तुमहीं । यह निश्चै करि जानत हमहीं ॥
 नाम रूप गुन करि जग माही । उतम मध्यम अधम जु आहीं ॥
 सूच्छम थूल जो कछु आहि । तुम बिन मैं नहि जानत ताहि ॥
 सो तुम सावधानता धरौ । अतिहि घोर तपस्या करौ ॥
 ता करि हमें खेद उपजावौ । अन्येस्वर की संक करावौ ॥
 हे सर्वग्य सकल के ईसुर । यह जो मैं तुम सो पूछी हरि ॥
 पुन यह हम जु जान लेंथ जैसैं । वरन सुनावौ सब तुम तैसैं ॥

ब्रह्मोवाच —
 अहो पुत्र यह प्रश्न तिहारौ । या ते है यह उत्तम भारौ ॥
 ता ते कृष्ण कथा के भीतर । मो को प्रेक्षौ अहो साधुवर ॥
 मो ते परे जु ईश्वर आहि । नारद तू नहि जानत ताहि ॥
 मो को ईश्वर मानत ता ते । तुमरो वचन न भूठौ या ते ॥

हरि जु तेज करि जग प्रकासे । परकासे कों हम परकासे ॥
 जैसे रवि ससि अग्निरु तारे । परकासे परकासे भारे ॥
 जा हरि की दुजय माया करि । मोहि कहत हैं जग गुरु नर वरा ॥
 ता भगवान बासुदेव हि हम । करत हैं वार ही वार नमो नम ॥
 जा करि मोहित नर अरु नारी । गहत अहंता ममता भारी ॥
 सो माया अति लज्जा पावै । हरि के सनमुख जब ठहरावै ॥
 कर्मरु काल सुभाव जीव पुन । पंच जे महाभूत नारद मुनि ॥
 ते हरि ते न्यारे नहि कोई । सबके कारन हैं हरि सोई ॥
 जग जोय तप ग्यान बेद पुनि । गति पर लोक देवता हे मुनि ॥
 औरौ हे नारद मुनि जिते । नारायन पारायन तिते ॥
 द्रष्टा निर्विकार सर्वात्म । ताकौ सृज्यौ बिस्व सिरजत हम ॥
 उनही में उपज्यौ हो हे मुनि । उनहीं करि प्रयौ हो मैं पुनि ॥
 सत रज तम तीनौ गुन जिते । पालन सृजन प्रलै कौ तिते ॥
 प्रहन किये माया करि ते गुन । जे हरि माया गुन करि निर्गुन ॥
 महाभूत इंद्रिय देव पुनि । इनही के कारन सु तीन गुन ॥
 सदा पुरुष जो छूज्यौ आहि । माया संग सो बांधे ताहि ॥
 जा हरि जू कौ तीन गुननि करि । तब न जान्यौ जात हे मुनिवर ॥
 सो हरि सब के ईश्वर आही । मेरे ईश्वर जानौ ताही ॥
 जगमायेन सृज्यौ चहे जेवै । कालरु कर्म सुभाव सु तवै ॥
 आप ही आय प्राप्त होय जोई । अपनी माया सो गहि सोई ॥
 कालरु कर्म स्वभाव हैं जिते । ईश्वर ने प्रेरित किये तिते ॥
 तिन करि गुन में छोभ जु भयौ । महतत्व जहां जन्महि लयौ ॥
 रज सत दोऊ गुननि जुत जोई । लाग्यौ विकरन महतत सोई ॥
 तमगुन मुख्य भयो हंकार । ता के आहि तीन परकार ॥
 सात्विक राजस अरु तामस पुनि । महाभूतनि में सक्ति है तमगुन ॥
 रजगुन की जु सक्ति इंद्रिन में । सतगुन सक्ति आहि देवन में ॥
 भयौ विकृत तामस हंकार जब । हे नारद मुनि भयौ अकास तब ॥

ता कौ गुन जु सवद है सोई । द्रष्टा दृश्य दिखावत जोई ॥
 नभ विकार पावन लाग्यौ जब । ता ते पवन सु प्रगट भयौ तब ॥
 प्राण ओज सह बल कारन सो । सवद स्पर्श तास गुन हैं हो ॥
 कालस्वभावरु कर्मनि ते जब । लाग्यौ होन पौन विकृत तब ॥
 भयौ तेज ताके हैं तीन गुन । सवद स्पर्श रूप तीजौ पुनि ॥
 तेज विकार पावन लागो जब । जल रसमय ताते ही भयो तब ॥
 ता जल में गुन चार जु भए । सवद स्पर्श रूप रस छए ॥
 जल विकार पावन लाग्यौ जब । पृथी होत भई ता ते तब ॥
 ताके पांच भए गुन मुनिवर । सवद स्पर्श रूप रस गंध ॥
 मन सात्विक हंकार ते जानौ । ताही ते दस देव सु मानौ ॥
 रवि दिस पवनरु वरुन उपींद्र । अश्वनी प्रजेस मित्र अग्नींद्र ॥
 विकृत भयौ राजस हंकार जब । होत भई दसही इंद्रि तब ॥
 तुक जिह्वा दृग दाना कान । भुजा चरन गुदा लिंगरु घ्रान ॥
 ग्यान सक्ति ऐसी सु बुधि पुनि । क्रिया सक्ति भए प्राण अही मुनि ॥
 भूतेंद्रि मन गुन हैं जिते । आपस मांदि मिले नहि तिते ॥
 तब ब्रह्मांड सरीर जु आहि । नेकु बनाय सकै नहि ताही ॥
 तब हरि सक्ति सु प्रेरे सबै । मिल गए सबै परस्पर तवै ॥
 माया के गुन अंगीकृत किये । छोटे बड़े देह रचि लिये ॥
 सब मिलि जा अंडहि हो कर्यौ । वरस हजार सु जल में पर्यौ ॥
 काल स्वभाव कर्म जुत श्री हरि । दयौ अचेतन कों चेतन करि ॥
 सहस चरन ऊरु कर जिनके । दृग मुख मस्तक सहस हैं तिनके ॥
 सोई परमात्म आदि पुरुष हरि । न्यारे भए सु अंड छेद करि ॥
 जा हरि के जु अंग हैं जिते । पंडित लोकनि वरनति तिते ॥
 सात लोक नीच के हैं जे । कश्योदिक अंगनि करि के ते ॥
 सात लोक ऊपर के जेई । ऊपर ले अंगनि कर नेई ॥
 द्विजवर हरि ही कौ मुख जानौ । छत्रो भुजा सु ताकी मानौ ॥
 हरि के उरु वैश्य जु आही । सूद्र जु आहि चरन लहु ताही ॥

भूलोक हरि चरन विराजै । नाभि में अंतरीक्ष पुनि राजै ॥
स्वर्गलोक हिय मांहि अहो मुनि । महर्लोक उर माहि लहौ पुनि ॥
हरि की प्रीति में जन लोक । दोऊ ओठनि में है तप लोक ॥
और है सत्यलोक पुनि जोई । हरि कौ मस्तक जानौ सोई ॥
पुनि वैकुण्ठ धाम जो आहि । नित्य सत्य तुम जानौ ताहि ॥
कटि में अतल बितल ऊरु पुनि । सुध सुतल जंघा में हे मुनि ॥
पिंडरी तलातल टंकने महातल । पुनि हरि चरन जु आहि रसातल ॥
हरि तरवा पातालहि जानौ । अैसे जग मय हरि कौ मानौ ॥
चरन माहि है पृथ्वी लोक । नाभि माहि है भुवर सु लोक ॥
मस्तक में है स्वर्ग की रचना । अथवा अैसे लोक कल्पना ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते

पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

८ अध्याय

दोहा—छठे ध्याय बैराट की, कही विभूति सुनाय ।

अध्यात्मादिक भेद करि, पूर्ब उक्त दृढ़ आय ॥

ब्रह्मवाच—

बानी अग्नि भए मुख ते मुनि । सात धात में सात छंद पुनि ॥
अन्न ते हव्य कव्य अमृत ते । पुनि सव रस जिह्वा ते भए ये ॥
पवन प्रान नासा ते भए मुनि । अश्विनी कुमार ओषधी जे पुनि ॥
गंध सुगंध आहि पुनि जिती । भई घ्राण इंद्रि ते तिते ॥
चक्षु ते रूप तेज है गए । स्वर्ग सूर्य नैनन ते भए ॥
तीरथ दिसा कान ते भए मुनि । सव्द अकास श्रवन इंद्रि पुनि ॥
वस्तु सार सौभग है जिते । हरि अंगनि में रत है तिते ॥
पवन स्पर्श अरु जग्य है जेई । हरि की तुच ते प्रगटे तेई ॥
हरि के रोम बृच्छ ये सवै । जिन करि जग्य सिध होय अवै ॥
बहुत केस डाढ़ी नख जिते । विजुरी मेघ सिला है तिते ॥
सबके रच्छक नृप है जेई । हरि भुजानि ते प्रगटे तेई ॥

मंगल अभै और भू लोक । पुनि आकास और सुर लोक ॥
सबै मनोरथ पूरन करन । हे मुनि निश्चै हैं पग धरन ॥
जन्म आनंद वीर्य विधि जिते । विष्णु सिष्णु तैं उपजे तिते ॥
सुत उपजावनि में सुख जोई । भयौ उपस्थ इंद्रि ते सोई ॥
यम मल त्याग मित्र है जो मुनि । भयौ पायु इंद्रि ते सो पुनि ॥
हिंसा मृत्यु नर्क दरिद्राई । गुदा स्थान तैं भई यों गाई ॥
हारिबौ अरु अधर्म अग्यान । ये हरि की सु पीठ ते जानि ॥
नद अरु नदी जु नाड़ी जानौ । अस्थि समूह सु पर्वत मानौ ॥
नरनि कौ नास समुद्र रस माया । इनो नें उदै उदर तें पाया ॥
मन कौ स्थान हृदै हरि कौ पुनि । सनकादिक कौ अरु तुमरौ मुनि ॥
मैं सिव धर्म सत्व विग्यान । इनकौ हरि कौ चित है स्थान ॥
हम तुम तुमरे भ्राता जिते । सिव सुर असुर नाग नर जिते ॥
खग मृग सर्प भूत पसु जच्छ । पितर सिध विद्याधर रच्छ ॥
चारन द्रुम गंधर्व अप्सरा । जल थल नभ बासी जु सुर नरा ॥
ग्रह नक्षत्र बीजुरी तारा । घन गरजन यह हरि ही सारा ॥
भूत भविष्यत वर्तमान जो । हे मुनि यह सब हरि ही है सो ॥
जा करि विस्व की व्याप्त जानौ । इक बिलांद हरि न्यारे मानौ ॥
रवि मंडल प्रकास के जैसे । बाहर हू परकासे तैसे ॥
ऐसे हरि देहनि परकासे । पुनि अंडही सब ओर उजासे ॥
मरन धर्म तैं न्यारे हे मुनि । कर्मन कौ फल परसत नहि पुनि ॥
परमानंद अभै दाता जो । ता की यह महिमा दुस्तर हो ॥
हरि के अंस लोक ये सबै । तिनमें प्राणी बसत हैं अवै ॥
उपर तीन लोक ये भाषे । अमृत छेम अभै तहां राखे ॥
तीन स्थान त्रिलोकी बाहर । ब्रह्मचारी आदिक के तहां घर ॥
ब्रह्मचर्य बृत्त जाके नाही । सो तौ रहत त्रिलोकी माही ॥
अविद्या जुक्त जीव है जोई । चलै भोग मारग में सोई ॥
जो जिय विद्या जुक्त है हे मुनि । मुक्ति मार्ग में चलति है सो पुनि ॥

जा हरि ते ब्रह्मांड यह भयो । सो बिराट पुनि जग हूँ गयो ॥
 भूतरु इंद्रि गुन हैं जिते । या बिराट में लखियत तिते ॥
 दोऊ प्रकास करि न्यारे ऐसे । किरननि करि प्रकास रवि जैसे ॥
 ताही हरि की नाभि कमल तें । हे नारद मुनि प्रगच्छौ जब मैं ॥
 तब ता हरि के अंगनि बिन । लखी जग्य सामग्री नाहिन ॥
 कुस पुनि काष्ट जग्य की धरनी । मख पसु पुनि रितु बहु गुन करनी ॥
 पात्ररु औषध बहु गुन सानी । घृत रस लोह मृत्तिका पानी ॥
 वेद चतुर्होतादिक कर्म पुनि । जोतिष्टोम नाम स्वाहा मुनि ॥
 मंत्र दंडिना व्रत हैं जोई । देवनि कौ उद्देस है सोई ॥
 कर्म सास्त्र संकल्प विचार । कर्म करनि कौ जौ परकार ॥
 प्रायश्चित्त सुरनि कौ ध्यान । कर्म समर्पन फल पुन आनि ॥
 हरि अंगनि में है ये सबै । तिन करि सिध करी मैं अबै ॥
 हरि के अंगनि करि मुनि जबै । करी सिध सामग्री सबै ॥
 तिन करि जग्य पुरुष जो आहि । हे मुनि मैंने पूज्यौ ताहि ॥
 पुनि तेरे नव भ्राता जिते । सावधान पूजत भए तिते ॥
 मुनि रिषि पितृन देवता जिते । दैत्य मनुष्य औरहू किते ॥
 काल काल में जग्यनि करि करि । पूजति भए तिनही को मुनिवर ॥
 नारायन भगवान विराजत । यह सब जग ताही में राजति ॥
 निर्गुन सृष्टि करन के हेत । माया के जु गुननि गहि लेत ॥
 ता कौ प्रेरण करत हो मैं मुनि । ता के बस सिव नास करत पुनि ॥
 त्रिगुनी माया धारे जोई । विष्णु रूप करि पाले सोई ॥
 अहो पुत्र पूज्यौ हो ते जो । तो सों बरन सुनायो मैं सो ॥
 कारज कारन लखियत जितौ । हरि ते न्यारौ नेकु न तितौ ॥
 बानी मेरी मिथ्या नाहीं । इंद्रि न जाहि कुमारग माही ॥
 मन की गति मिथ्या नहि याते । धरे हिय में हरि मैं जातें ॥
 वेद सरूप तपोमय मैं मुनि । प्रजापतिन कार पूजत हो पुनि ॥
 सावधान हैं ध्यान लगायौ । ता तें जनम्यौ सो नहि पायौ ॥

निज माया विस्तार है जोई । हरि न लखें अकास लौ सोई ॥
 ता के चरन परम सुखकारी । साधु क्लेश नासक पुनि भारी ॥
 पुनि तिन में मंगल बहुतेरौ । ता कौ सीस नवति यह मेरौ ॥
 हम सिव ता कौ तत्व न जानें । कहौ ये सुर कहा तें पहचानें ॥
 माया मोहित बुधि हमारी । माया रचित सृष्टि यह सारी ॥
 हमरौ ग्यान आहि मुनि जितौ । ता समान जग लहत हैं इतौ ॥
 ता हरि के अवतार कर्म जे । गान करत हैं हम सबरे ये ॥
 पै नहि हम जु लखि सकें ता कौ । हमरे नमस्कार हैं वा कौ ॥
 सोई अजन्मा आदि पुरुष हरि । कल्प कल्प में आये हीं करि ॥
 आपही आप में आपन को मुनि । सृजे पाल संहार करे पुनि ॥
 केवल ग्यानरूप हैं जोई । सब में बिराजमान हैं सोई ॥
 अतही सुध सदा थित पूरन । संदेहादि रहित पुनि निर्गुन ॥
 सत्य रूप पुनि नित्य बिराजै । आदि अंत नहि ता कौ छाजै ॥
 हे नारद अद्वै जो आहि । है यह तत्व लहे मुनि ताहि ॥
 तन मन अरु इंद्रि हैं जितौ । होय प्रसन्न तबै मुनि तितौ ॥
 असत कुतर्क करें मुनि जबै । अंतर्धान होय सो तबै ॥
 व्यापक प्रकृति के प्रेरक जोई । आद्य अवतार लहौ मुनि सोई ॥
 काल स्वभाव थूल सूक्ष्म पुनि । महत्त्व महाभूत सबै गुन ॥
 अहंकार इंद्रि बिराट पुनि । अरु बिराट अंतर्धामी सुनि ॥
 अरु थावर जंगम हैं जोई । हरि अवतार लहौ मुनि सोई ॥
 हम सिव विष्णु और दच्छादिक । तुमरु स्वर्ग पालक इंद्रादिक ॥
 अंतरीक्ष के पालक हैं जे । धर पताल रच्छाकारी जे ॥
 विद्याधर गंधर्वरु जच्छ । चारन उरग नाग पुनि रच्छ ॥
 रिषि अरु पितर सिव पुनि जिते । मुख्य दैत्य दानव पुनि तिते ॥
 प्रेत पिसाच भूत जे हैं मुनि । कूष्मांड खग मृग जल जिय पुनि ॥
 भगवत तेज जुक्त है जो मुनि । मन उत्साह जुक्त करि जो पुनि ॥
 बलरु सक्ति इंद्रिन की जोई । छमा जुक्त सोभा जुत सोई ॥

लज्जाजुत संपत्ति जुक्त जो । बुधिरु अद्भुत बरन जुक्ति सो ॥
 पुनि मुनि रूप कुरूप है जितौ । हरि ही कौ सरूप है तितौ ॥
 हरि लीला अवतार है तिते । मुख्य कबिन नैं बरने जिते ॥
 करननि के मालिन्य है जोई । सुनत ही दूर करत हैं तेई ॥
 सुंदर परम कहत मैं तो सो । करननि करि पीवौ तुम मों सौ ॥
 इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते
 षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

दोहा—हरि लीला अवतार जे, कर्मनि सहित बखानि ।
 विधि ने नारद सों कहे, ध्याय सातए जानि ॥

ब्रह्मोवाच—

धरती काढ़नि हेत मुरारी । सूकर की मूरत लै धारी ॥
 समुद्र माहि हिरनाक्षस जोई । करत भयौ बड़ जुधहि सोई ॥
 दाढ़नि करि फार्यौ ता औसैं । इंद्र बज्र सों पर्वत जैसैं ॥
 रुचि की आकृती तिय नाम । ता में भए जग्य अभिराम ॥
 तिननि दखिना में उपजाए । सुजम नाम जे देव कहाए ॥
 इंद्र होय सब कौ दुख हरयौ । तब हरि नाम स्वायंभू धरयौ ॥
 देवहूती कर्दम की नारी । ता में प्रगटे कपिल मुरारी ॥
 नौ बहननि अतही सुख पायौ । मातहि आत्म ग्यान सुनायौ ॥
 ता करि मन उज्जल भयौ ताकौ । पुनि पायौ सरूप तिन ताकौ ॥
 अत्रि पुत्र की चाह करी जय । दियौ अपन पौ यौ हरि कही तब ॥
 ता ते दत्त नाम भयौ हे मुनि । सहसबाहु जटु आदिक जे पुनि ॥
 पद रज लै जु सुध है गए । जोगरिध पुनि पावति भए ॥
 विविध लोक मृज्यो मन धर्यौ । तब मैं प्रथम बहुत तप कर्यौ ॥
 तब सनकादिक वपु परकास्यौ । प्रलै में आतम तत्व जो नास्यौ ॥
 सो अब तत्त्व इननि मुनि कस्यौ । ता तैं रिषिनि हिय हरि लख्यौ ॥
 दण्ड प्रजापति की दुहिता जो । मूर्ति नाम धर्म की तिय सो ॥

ता में प्रगटे नर नारायन । दुर्घट तपही में पारायन ॥
 तप कौ नासन सुन तिय जितौ । आई भई समर्थ न तितौ ॥
 क्रोध दृष्टि करि कामहि जारे । क्रोध जु या के तन हिय जारे ॥
 ता क्रोधहि नहि कोऊ जरावै । सो हरि सो अतिहि भै पावै ॥
 ता ते कामी देव जौ आही । कैसें कहौ हरि कै दिग जाही ॥
 बालक ध्रुव नृप के दिग जबै । मात कुवचन सरनि सों तवै ॥
 पीड़ित होय गयौ बन माहीं । श्रीहरि आय दियौ वर ताहीं ॥
 सबके ऊपर ले बैठारे । स्तुति करत सप्ररिष सारे ॥
 चलयौ बेन उत्पंथ मग जबै । सब द्विज स्थाप देत भए तवै ॥
 ता करि बल ऐश्वर्य गयौ जय । नरक मांहि सो गिरन लग्यौ तब ॥
 रच्छा हेत प्रार्थना करी । तब हरि देही पृथु की धरी ॥
 पुनि पृथु धर ते अन्नादिक सब । दुहि करि जगतहि सुख दीनौ तब ॥
 नाभि की तिय जु मेरु देवी मुनि । ता में प्रगटे रिषिभ देव पुनि ॥
 निज सरूप में थिति है जिनकी । सबै सांत इंद्रो हे तिनकी ॥
 पुनि सबही कौ सम करि जानें । काहू में आसक्ति न ठानें ॥
 जड़ आचरन तिननि कीनौ पुनि । परमहंस पद कहत ताहि मुनि ॥
 हेम बरन बेदोमय जोई । जग्य पुरुष सु जग्य में सोई ॥
 अखिल देवता रूप हैं जो मुनि । नाम है हयग्रीव जिनकौ पुनि ॥
 मेरे मख में प्रगटे जबै । स्वास लेत नासा तैं तवै ॥
 सुंदर बेद लछना बानी । प्रगट भई हमनें पहिचानी ॥
 सब जीवन कौ आश्रै जोई । पृथी कौ आश्रै हैं औई ॥
 औसे मछ रूप भगवान । वैवस्वत मनु लीनें जानि ॥
 मेरे मुख ते बेद जु गए । तिनकों फिरि लावति ते भए ॥
 प्रलै समैं कौ जल भैकारी । ता में बिहरे तेई मुरारी ॥
 अमृत हेत देव दानव जब । छोर समुद्र मथन लागे तब ॥
 धर्यौ पीठ पै कछप है सो । रई रूप मंत्राचल हो जो ॥
 गिर की फिरनि खुजावन करे । ता करि हरिहि नीद सी परै ॥

द्वितीय स्कंधः

११०

पुनि हरि श्रीनृसिंह वपु धर्यौ । देवन कौ भय दूर सु कर्यौ ॥
 भ्रमति भृकुटि बड़ी डाढ़ हैं जिनके । हिरनकसिप आया ढिग तिनके ॥
 पकरि ताहि जंघनि पर डार्यौ । नखिन सों तुरत उदर लें फार्यौ ॥
 जल बिहार गजराज करै जब । प्राह नें पाव पकर लीनौ तब ॥
 आरत है अबुज इक लयौ । पुनि हरि सों यो बोलति भयौ ॥
 लोकनाथ सुनि बचन हमार्यौ । मंगल रूप है नाम तिहार्यौ ॥
 आदि पुरुष हे कृष्ण मुरारी । तीरथ हू तें तुव जस भारी ॥
 सुनि हरि चढ़ि सु गरुड़ पै धाए । हाथ में चक्र लिए ही आए ॥
 प्राह के मुख कों डार्यौ फारि । सूंड पकरि गज लियौ उधार ॥
 अदिति सुतनि में छोटे बावन । गुनान में बड़े सुजग्य उपावन ॥
 तीन पैड़ कौ मिस लै कर्यौ । राज्य त्रिलोकी कौ पुनि हर्यौ ॥
 धर्म माहि जौ चलै ताहि हरि । बिना भीख नही भ्रष्ट सके करि ॥
 देवनि कौ अधिपति है यौ जो । बलि कौ नहि पुरुषारथ है सो ॥
 जो बलि हरि चरनोदिक जोई । मस्तक पर धारत भयौ सोई ॥
 जा बल कौ गुरु आप हू द्यौ । तऊ न प्रतिग्या छोड़ित भयौ ॥
 पुनि बल अपनौ तन हे जोई । कीनौ हरिहि समर्पन सोई ॥
 पुनि हंसा अवतार जु भयौ । भगवत ग्यान तुमें जिन द्यौ ॥
 आत्म तत्व परकासै ग्यान । फिर संतुष्ट भए भगवान ॥
 तब तुम सों हरि जोग कहौ सौ । अनायास हरिदास लहें जो ॥
 हरि मनु वंस के पालक जोई । मन्वंतर में प्रगटे सोई ॥
 तेज अखंडित चक्र रूप जो । करे दसो दिस में धारन सो ॥
 सत्य लोक लो जस विस्तारे । दुष्ट नृपनि कौ दंड हू धारे ॥
 धन्वंतर अपने सुनाम करि । रोगिन के सब रोग लेत हरि ॥
 जग्य भाग दैत्यनि रोक्यौ जो । ता भागहि पुनि प्राप्ति होय सो ॥
 आयु बढ़ावनिहार है जोई । करे प्रवृत्ति वेद अस सोई ॥
 धर के कंटक रूप नृपति जे । बड़ि के रहे अदिष्ट ही सो ते ॥
 द्विज द्रोही श्रुति मारग तजे । नरक दुखान के सन्मुख भजे ॥

द्वितीय स्कंधः

१११

ते नृप परसराम फरसा करि । मारे बेर इकीस हे मुनिवर ॥
 हम पै बहुत अनुग्रह कर्यौ । वपु इच्छाक वंस में धर्यौ ॥
 दसरथ आग्या पाय गए वन । संग भए सीता अरु लछमन ॥
 बैर कियौ रावन नें जबै । नाम कौ प्राप्त भयौ सो तबै ॥
 लंकहि जाय्यौ चाहति अैसे । त्रिपुर जरायौ सिव जु जैसै ॥
 तिया विरह सों अति ही तए । अरुन नैन पुनि हरि के भए ॥
 सांप मकर अरु प्राह है जिते । समुद्र में जरन लगे तब तिते ॥
 समुद्र हू अति ही कांपति भयौ । बेग राम जू कों मग द्यौ ॥
 इंद्र कौ गज ऐरावति जोई । दांतनि रावनि के उर सोई ॥
 मारे तबै उखरि ते गए । जिन जिन दिसिन प्रकासित भए ॥
 रावन तिनकौ पालन करै । गर्वित है सेना में फिरै ॥
 धनुष की टंकारनि सों राम । मारिहैं ताहि हरी जिन बाम ॥
 असुरनि करि पीड़ित धर भारी । क्लेश निवारन भए मुरारी ॥
 श्रोमन्नारायन हैं जोई । सब नर इनकौ जानति सोई ॥
 कोऊ न जान सके मग जिनके । महिमा जुक्त कर्म पुनि तिनके ॥
 प्रथम पूतना रूपहि मार्यौ । चरन सों सकट उलटि करि डार्यौ ॥
 अर्जुन तरु अकास कों गए । घुंटावनि चलति डारि ते दए ॥
 बिष सों मरे बाल बछ जिते । कृपा दृष्टि सो ज्याए तिते ॥
 बिषही आदि पराक्रम जाके । जीभनि में चंचलता ता कें ॥
 ता काली कों दियौ नकारि । दह में कीना बहुत बिहारि ॥
 इनके कर्म अलौकिक हैं सब । निसि में सूत हुत गोप जब ॥
 जरन लग्यौ सूकौ बन तबै । मानत भए मृत्यु तहा सबै ॥
 सब पै नेत्र मुदाय लिए तब । आग्न पान करि राखि लिए सब ॥
 दधि कौ भाजन फोर्यौ जबै । बांधन लगी जसोधा तबै ॥
 जाय जेबरी जो जो ल्यावै । हरि के सों नहि पूरी आवै ॥
 पुनि हरि लई जभाई जबै । मुख में लखी त्रिलोकी तबै ॥
 जसुधा कौ मन डरपति भयौ । हे दई कहा पूतहि है गयौ ॥

द्वितीय स्कंधः

११२

नंदहि बरुन लोक लै गए। तहां जाय पुनि ल्यावति भए ॥
मय सुत नै गिरि कंदर भीतर। रोके सखा छुटाए ते हरि ॥
सूते गोकुल बासी जिते। लै गोलोक गए हरि तिते ॥
इंद्र कौ जग्य मिटायौ जबै। ब्रज पर कोप कियौ तिन तबै ॥
ब्रज पर वर्षा कीनी भारी। गोकुल रछा हेत मुरारी ॥
सात द्यौस गोवर्धन जोई। द्विन अंगुरी पर राख्यौ सोई ॥
निसि में खिली चादिनी जबै। वन में रास कियौ हरि तबै ॥
ललित राग मुरली में गायौ। काम दुख जिनके उपजायौ ॥
तिन गोपिन कौ लै भाग्यौ जब। संख बूड़ कौ हरि मारयौ तब ॥
मल्ल प्रलंब केसी अरिष्ट वक। कंस कुबलियापीडरु धेनुक ॥
मिथ्या बासुदेव नर्कासुर। साल द्विविद बलवल पुनि संवरा ॥
रुक्मिम बिदूरथ कालजवन पुनि। बैल दंतवक्रादिक हे मुनि ॥
सृज मत्स कुरु कैकय देस। कंबोज देस के जिते नरेस ॥
रन में धनुषनि लै लै आए। मारि मारि हरि धाम पठाए ॥
अर्जुन भीमरु बलि द्वारा पुनि। हरि ही ने मारे हैं हे मुनि ॥
निसि दिन बुधि घटति है जिनकी। लखि अल्पायु व्यास मुनि तिनकी ॥
सत्यवती में प्रगट होय मुनि। श्रुति द्रुम की साखा कीनी पुनि ॥
जिनके बेग लखे नहि जाई। मय नै औसी पुरी बनाई ॥
तिनके बल असुरनि दुख दीनौ। बहुर सबेद मारग गह लीनौ ॥
तब बुधावतार लै धरयो। ता करि उनकौ ग्यान सु हरयौ ॥
अरु पापंड धर्म हैं जिते। तिनकौ दिए सिखाय सु तिते ॥
जब साधुनि के घर के माहीं। हरि की कथा होयगी नाहीं ॥
सूद्र समान नृपति सब हूँ है। द्विज हू पाषंडी हूँ जै है ॥
स्वाहा स्वधा वषट ये बानी। हूँ है नाहि जबै सुख सानी ॥
तब काल नासक कलि के अंत। प्रगटेंगे कल्की भगवंत ॥
तप मरीचि परजापति हम पुनि। सृष्टि समें हरि ते उपजति मुनि ॥
धर्म विष्णु मनु देव नृपति ते। पालन काल समें प्रगटति ये ॥

द्वितीय स्कंधः

११३

असुर अधर्म सर्प सिब जिते। नास समें हरि होत हैं इते ॥
धर के रज कन गा लेय जोई। हरि गुन गन न सकै पुनि सोई ॥
बावन हरि अवतार कियौ जब। चरन अखंडित दिए वढाय तब ॥
मायावर्न लो भए जु कांपत। कांपत ब्रह्मलोक भए थांभत ॥
मैं अरु सनकादिक ये जे ते। हरि माया बल लखें न ते ते ॥
और कहां ते जानें हे मुनि। सब के आदि सेप हैं जो पुनि ॥
इक हजार मुख करि गुन गावें। तऊ अब लों गुन पार न पावें ॥
जा पै हरि की कृपा सोई नर। हूँ निष्कपट चरन सेवै हरि ॥
दुस्तर हरि की माया तरै। हौं मैं देह माहि नहि करै ॥
हरि की माया जानति इते। हम तुम सिब सनकादिक जिते ॥
रिभु प्राचीनबर्हि प्रह्लाद। सतरूपा स्वयंभूमनु आदि ॥
अंग ध्रुव इच्छ्वाक ऐल गय। रघु बिदेह मुचकुंद सगर रय ॥
अलरक सतधन्वा सुकदेव। गाधनु अंबरीष रंतदेव ॥
बल अमूर्ति देवव्रत सौभर। सिबी उतंक दिलीप पारासर ॥
बिदुर जजाति विभीषन देवल। हनुमान मांधाता पिप्पल ॥
कुंतीसुत पुनि भूरीसेन। श्रुतिदेवादिक रिष्टसेन ॥
सरस्वत बासी उधव पुनि। जानति इत्यादिक नारद मुनि ॥
हून भील पुनि सूद्ररु नारी। पसु अरु पाप जीव जे भारी ॥
ते जब साधुन के मग चले। माया जानि तरें तब भलें ॥
जे न हरि के हिय में धरें। माया जानि क्यों न ते तरें ॥
निर्भय सांत मूर्ति विग्यान। सुध रूप सब ठौर समान ॥
कारज कारन ते हैं परें। परम तत्व ताही उचचरे ॥
जे व्यौहार परायन बात। ते न तहां पहुँचति हे तात ॥
फल क्रियान कौ नाहि तहां मुनि। तिन सों माया अति लजात पुनि ॥
सुख सरूप सोकनि ते रहें। सब कोऊ ताहि ब्रह्म पुनि कहे ॥
हरि अंजती धरै मन कौ जत्र। राग दोष टारन साधन तब ॥
त्याग देय ज्यौ खोदनहार। इंद्र हूँ तजै सुदन व्यवहार ॥

द्वितीय स्कंधः

११४

महत्तत्त्व करि रचित जगत जो । पंचभूत परकासित है सो ॥
न्यारो होय देह ते' जवें । नासहि प्राप्त होय तन तवै ॥
मंगलदाता जन्मरहित जो । तहँ निर्लेप गगन से हैं सो ॥
हे सूत श्रीभगवान जु आहि । करि संछेप सुनायौ ताहि ॥
कारज कारन जेतिक जानौ । तिनके कारन हरि ही मानौ ॥
यह भागवत नाम है हे मुनि । जा में सब विभूति संग्रह पुनि ॥
यह नारायन माहि कहौ सब । या कौ तुम विस्तार करौ अब ॥
सर्वात्म सब कौ आधार । औसे हरि भगवान विचार ॥
ता में नर की रति होय जैसे । हे मुनि बरनि कहौ तुम तैसे ॥
ईश्वर की यह माया जोई । श्रद्धापूर्व सुनै नर कोई ॥
वक्ता कौ अनुमोदन करै । माया मोह में ना सो परै ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय

दोहा—जाननि को नृप प्रण यहु, किए आठए ध्याय ।

जीव ईस संबंध तन, ता कौ कहति मिटाय ॥

राजोवाच—

ब्रह्मा ने प्रेरे नारद मुनि । निर्गुन हरि के गुननि मांहि पुनि ॥
जा जा सों मुनि कहत भए ज्यौ । तत्त्वहि मैं जान्यौ चाहति त्यों ॥
अद्भुत हरि की बातें जितौ । करे लोक कौ मंगल तितौ ॥
महाभाग मो सों कहौ या तें । मैं सब कौ संग छोड़ौ ता ते ॥
सर्वात्म हरि में मन धरौ । धरि मन तनहि त्यागि पुनि करौ ॥
श्रद्धाजुक्त नित्य हे मुनि । हरि के चरित सुनै गावैं पुनि ॥
ता के हृदै माहि भगवान । हे मुनि बेग बिराजे आनि ॥
कर्न रंघ्र द्वारा है श्री हरि । साधुनि के उर में प्रवेस करि ॥
दूर करं मालिन्यहि औसैं । घेर में आय बटोही जैसे ॥
पंचभूत करि रहित जीव जौ । पंचभूत तन रचित तास सो ॥

द्वितीय स्कंधः

११५

आप ही ते' अथवा कोई कारन । जानत हो तुम करो निवारन ॥
सब लोकन की रचना मय जो । विष्णु नाभि ते कमल भयो सो ॥
ता हरि तन की रचना जैसी । जीवहू की रचना कही तैसी ॥
ता तें जीवरु ईसुर भीतर । जितौ अधिकता सो कही मुनिबर ॥
जीव उपाधि नियंता जोई । सब भूतनि सृजै विधि सोई ॥
नाभि कमल ते प्रगट्यौ सो मुनि । हरि करुन ते हरिहि लख्यौ पुनि ॥
उत्पति पालन प्रलै हेत जो । सब के हिय बिराजति हैं सो ॥
माया ईस छोड़ि ता मायहि । सोवें कहां कही मो सो यहि ॥
लोकरु लोकपाल हैं जिते । हरि अंगनि करि बरने तिते ॥
लोक लोकपालनि करि हरि पुनि । यह वृत्तांत मोहि कहियै मुनि ॥
महा कल्परु बिकल्प कहौ मुनि । काल कौ ज्यौ उन्मान सोऊ पुनि ॥
भूत भविष्यत वर्त्तमान जे । जिनतें होय सद्द ये कहो ते ॥
पितर मनुष्य देवतनि की जो । आयु प्रमान कहो हम सो सो ॥
छोटी बड़ी काल गति जितौ । हे मुनि हम सों कहिये तितौ ॥
जैसी जितौ कर्मगति है मुनि । ते नीके मो सो बरनौ पुनि ॥
तीन गुननि करि रचित देव ये । तिनकी चाह करत हैं नर जे ॥
तिने कौन कर्म ते' पावै । हे मुनि इन्हें कहौ जौ भावै ॥
दीप नदी पाताल समुद्र । दिसि आकास गिरि मृद नच्छत्र ॥
इनकी उत्पति मोहि कहो मुनि । तहां के वासिन कौ सु जन्म पुनि ॥
बाहर भीतर जितौ प्रमान । या ब्रह्मांड कौ करौ बखान ॥
साधुनि कौ आचर्न कहौ मुनि । वर्णाश्रम सुभाव निश्चै पुनि ॥
हरि अवतार चरित हैं जिते । अचिरज रूप कहौ मुनि तिते ॥
जुग पुनि जुग प्रमान कहौ हे मुनि । जुग जुग के धर्महि कहियै पुनि ॥
धर्म है साधार्न बिसेष जे । नरनि के मो सों कहौ सबै ते ॥
धर्म तमोली तेली के पुनि । राज रिषिन के धर्म कहौ पुनि ॥
नर के धर्म बिपत में जे ते । हे मुनि मोहि सुनावौ ते ते ॥
तत्त्वनि की संख्या कहौ हे मुनि । कारन ता के बल लखन पुनि ॥

द्वितीय स्कंधः

११६

हरि पूजा परकार सुनावौ । विधि अष्टांग जोग की गावौ ॥
 लिंग देह जोगिन को जोई । जैसे नास होय कहौ सोई ॥
 जोगीसनि की गति है जो पुनि । मौ सौ सबै सुनावौ सो मुनि ॥
 धर्मसास्त्र इतिहास पुरान । वेद रूप पुनि करौ बखानि ॥
 नरनि को उत्पति पालन नास । या को मो सो करौ प्रकास ॥
 कृष्ण वावरी बागादिक जे । अग्नि होत्र पुन जग्यादिक ते ॥
 इनकी विधि जु सुनावौ हे मुनि । धर्मादिक की विधि कहौ पुनि ॥
 जीयसवासित जन्म जनावौ । बहुर दंभ को जन्म सुनावौ ॥
 जियनि को बंध मोछ कहौ हे मुनि । बंध मोछ को रूप कहौ पुनि ॥
 हरि स्वतंत्र माया करि जैसे । क्रीड़ा करे कहौ मुनि तैसे ॥
 प्रलै समें माया तजि के जो । साछी हूँ कै रहति कहो सो ॥
 यह जु दास नैं पूछौ जोई । हे मुनि मोहि कहौ तुम सोई ॥
 यह तुम सब जानति हो अैसे । ब्रह्मा सब कछु जानति जैसे ॥
 पहले रिपिन कियौ जो हे मुनि । थित होय पिछले हूँ ता में पुनि ॥
 कृष्ण कथा में पान करत मुनि । जल अरु अन्न सबै छोड़े पुनि ॥
 तऊ मम प्राण जायगे नाहिन । एक विप्र के आप सु ता विन ॥
 सुत उवाच—

अैसे कृष्ण कथा को नृप जब । पूछी श्री सुक हूँ प्रसन्न तब ॥
 बरन्यौ श्रीभागवत पुरान । सब बेदनि की आदि समान ॥
 जो हरि जू नैं विधिहि सुनायौ । हे मुनि ब्रह्म कल्प जब आयौ ॥
 सब में श्रेष्ठ परीक्षित राजा । सुक सो जो पूछौ सुख काजा ॥
 तिनके उत्तर में मन दियौ । श्रीसुक लै आरंभहि कियौ ॥

इति श्रीभागवत महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

दोहा—नवें ध्याय विधि सों कह्यौ, हरि जू भागवत सार ।
 सो श्री सुक नृप सो कहत, उत्तर हूँ ता द्वार ॥

द्वितीय स्कंधः

११७

सुक उवाच—

सुध रूप आत्मा जौ आहि । माया बिना देह नहि ताहि ॥
 जैसे बिना अविद्या होयत । स्वप्न देह संबंध न रहि पुन ॥
 बहु स्वरूपिनी माया करि सौ । बहु रूपी भामति हेगो सो ॥
 देहादिक में रमति अहो मुनि । गहत अहंता ममता को पुनि ॥
 सुध रूप माया तें जो परै । मोह छोड़ि ता में मुन बिचरै ॥
 त्यागि अहंता समता तथै । पूर्ण रूप में राजै जयै ॥
 कपट रहित तप विधि ने कियौ । रोषि ताहि हरि दरसन दियौ ॥
 आत्म तत्व अति सुध जु आहि । सुधि हेत हरि भाष्यो ताहि ॥
 सब को गुरु ब्रह्मा है जोई । बैठि कमल आमन पर सोई ॥
 जग के सृजने में मन दयौ । औसी बुधि न पावति भयौ ॥
 जाकर सृष्ट होय यह सबै । बड़ी सोच पायौ विधि तबै ॥
 इक दिन जल में सब सु भयौ । तप तप सो विधि नैं मुनि लयौ ॥
 सो तप निर्विकचन को है धन । याही तें सु कहत तपोधन ॥
 सुति कें वचन भयौ ठाढ़ौ सौ । जा ने कह्यौ वचन यह सो कौ ॥
 ता को काहूँ न देख्यौ जयै । बैठि गयौ आसन पर तथै ॥
 पुनि विधि सोई वचन विचार्यो । करि विचार तप में मन धार्यौ ॥
 सावधान सो तप में भयौ । इंद्री पवन जीत मन लयौ ॥
 सबनि प्रकास करै तप जोई । दिव्य हजार बरस कियौ सोई ॥
 सफल ग्यान ब्रह्मा को आहि । कौऊ न तपसो पावै ताहि ॥
 सब तें परै न कौऊ जा ते । क्लेश मोह भय दूर तहां ते ॥
 ग्यानवंत गावत हैं जा कां । औसौ लोक दिखायौ ता को ॥
 जा में नाहि न तमो रजो गुन । नाहि दुहुनि सों मिल्यौ सतोगुन ॥
 काल प्रभाव न माया जहां । और कहां ते होय सु तहां ॥
 असुर सुरनि करि पूजत जेई । सदा पार्षद हैं तहां तेई ॥
 उज्जल स्याम सरूप हैं जिनके । अमल कमल दल नैन हैं तिनके ॥
 अति सुंदर पीतांबर धरें । लखि सुकुमारता मुरभी परें ॥

द्वितीय स्कंधः

११८

मनिन की कंठ धुकधुकी राजै । चार भुजा सोभा जुत छाजै ॥
मूंगा मनि तन आगे पीके । माला कुंडल मुकुट है नीके ॥
भक्तनि के विमान छए भारी । गोर बरन नारी सुखकारी ॥
तिन करि लोक भयौ सोभित यों । विजुरी जुत मेघनि सो घन ज्यों ॥
तहा हरि चरननि को पूजति सो । बहुत बिभूतिन करि लच्छमी जो ॥
बैठि हिंडोरा बहु सुख पावत । भ्रमर बृंद सब कीरति गावति ॥
सो लच्छमी हरि कर्मनि गावै । गाय गाय मन में सुख पावै ॥
साधुनि के हरि पालक जोई । जग पालक श्री पालक सोई ॥
पूरन जग्यनि के पालक जो । नंद सुतंदनि करि सेवित सो ॥
भक्तनि सों सन्मुख प्रसन्न पुनि । अति ही सुखदाई है चितउन ॥
हसनि लसनि छवि बदन विराजे । लाचन अरुन महा छवि छाजै ॥
चारभुजा पीतांबर धारी । कुंडल मुकुट महा सुखकारी ॥
पुनि ते सिंघासन पर राजति । उर में लच्छमी रेख विराजति ॥
और कहूँ एख्य न जेई । तिन करि जुक्त आहि हरि तेई ॥
सोरह नौ सक्तिनि जुत जोई । अपने धाम रमति है सोई ॥
तिनको ब्रह्मा देखति भयौ । हिये माहि आनंद हूँ गयौ ॥
तन में रोमांचित हूँ आए । प्रेम नैं जल में नैन भिजाए ॥
परमहंस मारग करि जिनकों । पैये नवति भयौ विधि तिनकों ॥
हरि नैं आग्या दीनी जोई । जग रचना विधि मानी सोई ॥
ता तैं हरि प्रसन्न भए भारी । विधि सिर पर कर धर्यौ मुरारी ॥
पुनि बोले हरि हस कैं ताहि । दिग में अति प्रसन्नता जाहि ॥

श्रीभगवानुवाच —

हे विधि ते दुस्तर तप कियौ । जग के सृजने में मन दियौ ॥
तो पर भयौ प्रसन्न अब सो मैं । दूर कपटि जोगिन कों जो मैं ॥
सब मंगल प्रापति होहु तो कों । मन बांछित वर कहिये मों कों ॥
सुख के हेत क्लेश है तब लों । हात न दरसन मेरो जब लों ॥
लोक हमारे को दरसन जो । मम इच्छा प्रभाव करि कै सो ॥

द्वितीय स्कंधः

११९

तप तप ते इकांत सुनि लियौ । सुनि कैं दीरघ तप पुनि कियौ ॥
मोहित भयौ कर्म में तू जब । सो उपदेस कियौ मैं ही तब ॥
मैं तप हृदै हृदै तप मेरो । तप ही मेरी सक्ति सु हेरी ॥
उत्पति पालन प्रलै सु जितौ । तप ही करि मैं करति हो तितौ ॥
ब्रह्मोवाच—

तुम सब के धिष्टाता भारी । सब बुधिन में थिति सु तिहारी ॥
बिना आवरण ग्यान सु ता करि । लखति मनोरथ सबके हे हरि ॥
प्राकृति रूप कहत तुम जोई । मांगत मैं देवो हरि सोई ॥
स्थूल सूक्ष्म जो रूप तिहारौ । जाने हम यह वर सु हमारौ ॥
अहौ हरि यह जु बिस्व है जोई । नाना सक्तिन करि जुत सोई ॥
पालन प्रलै सृजन या कौ जो । सत संकल्प जास कौ तुम सो ॥
आप ही आपन जोगमाया करि । आपे को ब्रह्मादि रूप धरि ॥
हे हरि तुम क्रीडति हो अैंसे । आप जाल रचि मकरी जैसे ॥
यह सब जाननि जोग्य है जोई । हे हरि देहु बुधि मोहि सोई ॥
तजि आलस मैं करिहौ सो सो । हे हरि तुम आग्या दई जो जो ॥
सृजति मोहि हंकार न होई । हे हरि करौ अनुग्रह सोई ॥
तुम सन्मान कर्यो मेरी यों । सखा सखा कौ करत अहौ ज्यों ॥
तुमरी आग्या कों मैं करिहों । अव्याकुल तन चित में धरिहों ॥
उत्तम मध्यम प्रजानि सरजति । हों कर्ता यह गर्व होहु मति ॥
श्रीभगवानुवाच—

मेरी परम गुह्य जो ग्यान । पुनि है सोई सहत विम्यान ॥
सहत रहस्य कहो मैं तो सौ । ग्रहन करौ सुनि कैं तुम मो सो ॥
रूप सक्ति गुन कर्म हमारे । सब अनुभौ में होहु तिहारे ॥
जैसो मैं तैसौ जानौ तुम । तुम पर यह अनुग्रह कीनौ हम ॥
कारज कान माया हूँ नहि जब । जग के पहलें हो मैं ही तब ॥
मध्य अंत में हो मैं ही सुनि । जगह सब मो कौ जानौ पुनि ॥
हे विधि हरि बिन दीखै जोई । मेरी माया जानौ सोई ॥

द्वितीय स्कंधः

१२०

हृग विकार करि चंदा जैसें । लखिये बहुत लहौ तुम तैसें ॥
विद्यमान परमात्मा जोई । दीखै नाहि मो माया सोई ॥
हे विधि राहु बिराजति जैसें । दीखत नाहि नरनि कौ तैसें ॥
छोटे बड़े जंतुन भीतर । पंचभूत सब रहे व्याप करि ॥
पुनि तिन ते न्यारे है जैसें । मैं हूँ सब जंतुन में तैसें ॥
जो कोउ आत्म तत्व लखौ चाहै । सो जन इतनोई अवगाहै ॥
सब ते श्रीहरि न्यारे आही । पुनि हैं सब जंतुनि के माही ॥
हे विधि चित्तिहि एकाग्र करि । मेरो यह मति लै हिय में धरि ॥
तुम मुनि कल्प विकल्प सु माही । कबहूँ मोह पाय हो नाहीं ॥

शुक उवाच—

पूज्य सचनि कौ विधि जो आहि । ऐसें हरि सु सुनायौ ताहि ॥
पुनि ब्रह्मा के देपति श्रीहरि । अंतर्धान रूप लीनौ करि ॥
अंतर्धान होय जो गए । विधि ताहि अंजुल जोरत भए ॥
सर्व भूत मय विस्व जु आहि । पहलौ सौ सृजति भयौ ताहि ॥
धर्मनि कौ पालक विधि जोई । इक दिन जग के सुख कौ सोई ॥
पुनि अपनौ मनोरथ कर्यौ । जम नियमनि में मन लै धर्यौ ॥
हे नृप नारद भक्त जु भारौ । सब बेटनि में विधि कौ प्यारौ ॥
सुंदर मील नम्रता भारी । पुनि जा के बस इंद्री सारी ॥
लखौ चाहै सो हरि माया कौ । करत भयौ संतुष्ट पिता कौ ॥
लोक पितामह ब्रह्मा कौ जय । नारद ने संतुष्ट लख्यौ तब ॥
नारद मुनि पूछत भयौ यह सब । हे नृप तुम मोहि पूछत जो अब ॥
जुत दस लखन भागवत जोई । नारायन विधि सों कह्यौ सोई ॥
सो विधि कहौ नारद सों सबै । विधि सो नारद पूछ्यौ जबै ॥
अति तेजस्वी व्यास महा मुनि । पार ब्रह्म कौ ध्यान करत पुनि ॥
रहत सरमुती कौ तट जहां । कह्यौ जाय नारद मुनि तहां ॥
हरि ते लोक भयौ यह जैसें । हे नृप मैं तोही कहिहौं तैसें ॥

द्वितीय स्कंधः

१२१

अरु तुम मो सो पूछ्यौ जो जो । क्रम तें तुम सुनैहों सो सो ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषा रसजानि कृते
नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दशम अध्याय

दोहा—नृप प्रश्ननि के उत्तरनि हेत भागवत द्वार ।
दसे ध्याय आरंभ सुक करत यहै निर्धार ॥

शुक उवाच—

सर्ग विसर्ग स्थान पोषन पुनि । ऊति मन्वंतर ईस कथा सुनि ॥
प्रलै मुक्त आश्रै पुनि जेई । तहा आहि दस लखन येई ॥
दसए तत्व ग्यान के हेत । नौ लखननि इहां कहि देत ॥
सक्ति वेद द्वारा पुनि येई । ग्यानबान बरनति सुनि तेई ॥
तत्त्वनि की उत्पति है सर्ग । विधि जो कीनौ सोई विसर्ग ॥
मर्यादा पालनि करि जोई । हरि उत्कर्ष स्थान है सोई ॥
हरि कौ अनुग्रह पोषन जानौ । कर्म बासना ऊति सु मानौ ॥
सुंदर धर्मन की प्रवृत्ति जो । हे नृप मन्वंतर जानौ सो ॥
हरि हरि दासन की जु कथा जो । हे नृप है ईसानु कथा सो ॥
जीव सवासनि सैन जु करे । पंडित सो निरोध उच्चरे ॥
तजि अभिमान हरिहि जो पावै । हे नृप सोई मुक्ति कहावै ॥
उत्पति पालन प्रलै करै जो । पार ब्रह्म हरि आश्रै है सो ॥
आध्यात्मक जीव जो आहि । इन्द्रिय धिष्टाता लहु ताहि ॥
होत विभाग दुहुनि कौ जा तें । देह आधिभौतिक यह ता ते ॥
तीनौ एक रहत होय जबै । एकहूँ की न सिध होय तबै ॥
इन तीननि कौ देखै जोई । स्वाश्रय परमात्मा है सोई ॥
जबै सुध परमात्म श्रीहरि । न्यारे भए जु अंड भेद करि ॥
अपने रहिबे कौ हरि तबै । अति पवित्र जल रचे सु सबै ॥
अपने रचे हुते जल जेई । सहस बरस तिन में रहे तेई ॥
नर श्रीहरि ता नें उपजाए । ता तें जल ये नार कहाए ॥

द्वितीय स्कंधः

१२२

नारनि मां हि अयन कियौ जा तें । नारायन हरि नाम है ताते ॥
 पंचभूत अरु कर्म काल पुनि । बहुर स्वभाव जीवन के सुनि ॥
 हरि के नुप्रह ही ते जोग । हरि नुप्रह विन है जु अजोग ॥
 जोग सेंज तें उठिके हरी । बहुत होन को इच्छा करी ॥
 तब तेजोमय बीरज जोई । त्रिविधि कियौ माया करि सोई ॥
 अधिभूताध्यात्म अधिदेव । तीन प्रकार किये हरि देव ॥
 पुरुष को एक वीर्य जो आहि । त्रिविधि भयौ जैसे सुनि ताहि ॥
 चेष्टा करति भए हरि जवै । हिय आकास ते प्रगटी तवै ॥
 तन मन इंद्री की जु सक्ति जे । ताही ते प्रगटे सु प्राण ये ॥
 जिन प्राणनि पाछे इंद्री सब । चेष्टा करत हे हे राजन अब ॥
 तिन विन चेष्टा करें न अैसे । नृप संग नृपति टहलुवा जैसे ॥
 चंचल प्राण भए भीतर जव । पुरुषहि भूख प्यास लागी तब ॥
 खान पियन को मन भयौ जवै । प्रथम भयौ मुख ता के तवै ॥
 ता मुख ते पुनि तालू भयौ । ता ते उदै जीभ ने लयौ ॥
 छह प्रकार के रस भए ता ते । जिनको ग्यान होत रसना ते ॥
 भई बोलवे की इच्छा जव । ता कै अग्नि देवता भयौ तब ॥
 बानी इंद्री भई तहां ते । प्रगटी बोलनि क्रिया उहा ते ॥
 सा वह बोलनि जल के माही । बहुत काल रुकि रही भई नाही ॥
 पवन चलायमान भई जवै । नासै छेद भए ये तवै ॥
 सूंघनि हेत प्राण इंद्री पुनि । वायु देवता गंध विषै सुनि ॥
 रहत प्रकास आप को जवै । देखनि की इच्छा भई तवै ॥
 आंखि भई दैवत रवि भयौ । इंद्री चक्षु रूप गुन लयौ ॥
 वेद गान सुनिवे मन भयौ । तबही काननि उदै सु लयौ ॥
 दिस देवता भ्रात्र इंद्री पुनि । सद्गति को सुनिवौ तिनको गुन ॥
 वस्तु की कौमलतारु कठिनता । लघुता गुरुता उन्न सितलता ॥
 जाननि की इच्छा भई जवै । चम स्थान भयौ तहां तवै ॥
 इंद्री रोम देवता द्रुम पुनि । अरु खुजायवौ है ता को गुन ॥
 तिही चर्म स्थान के भीतर । इंद्री भई तुचा हे नृप बर ॥

द्वितीय स्कंधः

१२३

पवन देवता ता को जानौ । स्पर्स करन गुन ता को मानौ ॥
 लेंन देंन को मन भयौ जवै । ता के दोय हाथ भए हे तवै ॥
 इंद्र देवता बल इंद्री पुनि । लैवौ दैवौ हैं तिनको गुन ॥
 चलैवे की इच्छा भई जवै । दोउ पाय होत भए तवै ॥
 विष्णु देवता गति इंद्री पुनि । जग्य वस्तु ल्यायवौ तास गुन ॥
 सुत करि चाह स्वर्ग की भई जव । सिष्णु स्थान भयौ ता के तब ॥
 तहा प्रजापति देव भयौ पुनि । इंद्री उपस्थ विषै ता को गुन ॥
 मल त्यागन इच्छा भई जवै । गुद स्थान प्रगट भयौ तवै ॥
 मित्र देव इंद्री सु पायु पुनि । मल को गिरिवौ है तिनको गुन ॥
 और देह की चाह भई जव । नाभि स्थान भयौ ताके तब ॥
 मृत्यु देव इंद्री सु अपान । दुहुन को विषै भयौ मर जान ॥
 भोजन जल संप्रह इच्छा जव । भई कूख ताके प्रगटी जव ॥
 अंतरु नाडी इंद्री तहां । समुदरु नदी देवता जहां ॥
 तुष्टि पुष्टि हैं विषै सु तिनकी । क्रम ते लहो भिन्नता इनकी ॥
 हरि माया जाननि इच्छा जव । भई हृद स्थान भयौ तब ॥
 मन इंद्री ससि देव भयौ पुनि । काम और संकल्प तास गुन ॥
 चाम लोहू तुच गज्जा मेद । हाड़ मास धातुनि के भेद ॥
 धर जल तेज रची ये जानौ । प्राण वायु नभ जल ते मानौ ॥
 सद्वादिक मय हैं इंद्री ये । अहंकार मय सद्वादिक ते ॥
 मन विकारमय और बुधि जौ । करवावैं विकार अनुभौ सो ॥
 स्थूल रूप हरि को यह आहि । हे नृप तोहि सुनायौ ताहि ॥
 भूम्यादिक आवरन आठ जे । तिन करि आवृत हेंगे हरि ये ॥
 और एक सूक्ष्म हरि तिन जो । उत्पति धिति लय पावति नहि सो ॥
 नित्यरु निबिसेप ताहि जानौ । बानी मन ते परे सु मानौ ॥
 ये दोऊ हरि जू के रूप । मैं तो सो नीकें कहू भूप ॥
 ग्यानवान दोउ प्रहन न करै । माया करि जा ते हरि धरे ॥
 सब कर्मन करि रहित सोई हरि । माया करि ब्रह्मा को बपु धरि ॥

द्वितीय स्कंधः

१२४

नाम सरूप किया हैं सरिजे । सृजे बाच्य बाचक ता करि ते ॥
रिपि चारन गंधर्व सिध मृग । मनु सुर पितर प्रजापति पसु खग ॥
गुह्यक असुर अप्सरा किन्नर । अहि किंपुरुष सर्प विद्याधर ॥
उरग रच्छ गंधर्व मातृ अरु । कूषमांड उन्माद भूत तरु ॥
प्रेत पिशाच विनायक जिते । जातुधान वेताल सु तिते ॥
जल थल नभ वासी पुनि उद्भिज । स्वेदज और जरायुज अंडज ॥
जड़ जंगम नद्ध गिरि जिते । सरीसृपादि सृजे हरि इते ॥
कोऊ पुन्यातम पापी कोऊ । कोउ जा में मिलि रहे दोऊ ॥
ये त्रय गति कर्मनि की जानौ । सतगुन तें होय सुर यह मानौ ॥
रजगुन तें सब होत हे नर यें । तमगुन तें होय नरक जीव जे ॥
हे नृप एक जु गुन हे जोई । ओर गुननि सों मिलि करि सोई ॥
एक एक गुन हैं नृप जेई । तीन तीन बिधि होय जां तेई ॥
विष्णुरूप जगकर्ता जौ हरि । सुर नर पसुनि माहि वपु धरि धरि ॥
सर्वनि धर्म मग माहि चलावें । पालन करे सुख उपजावै ॥
अपनी सृज्यो बिस्व यह है जो । काल अग्नि सिव रूप होय सो ॥
हे नृप संहारति हैं अैसें । पवन मेघ के गन को जैसें ॥
इह प्रकार करि श्रीभगवान । सर्वग्यनि नें कियौ बखानि ॥
जग में ग्यानवान हे जोई । गुनमय हरि हि न जानें सोई ॥
जग के जन्म कर्म के माही । हरि के कछु अभिमान हैं नाही ॥
कवि हू बरनन करे न याते । माया करि सु प्रकासति जाते ॥
सहस्र विकल्प कल्प बिधि जोई । हे नृप तोहि कछो में सोई ॥
जड़ जंगम सब होय कल्प तें । महत्त्वादि लहौ विकल्प में ॥
रूप कल्प लच्छन है जा कौ । असौ जो है काल सु ताकौ ॥
कहिहौ में प्रमान नृप सबै । पाद कल्प तुम सुनि लेहु अबै ॥
सौनक उवाच—

महाभागवत विदुर हे जोई । दुस्तज बंधुनि तजि करि सोई ॥
जाय तीरथनि माझि अन्दायौ । सूत जू यह तुम हमें सुनायौ ॥

द्वितीय स्कंधः

१२५

तत्त्व बिचार विदुर मैत्रे मुनि । जहा कियौ सो हमें कही पुनि ॥
पूछे पीछे मैत्रे मुनि ज्यौ । कछौ विदुर सो हमें कही त्यों ॥
अहो सूत जू विदुर चरित सब । तुम नीकें वरनौ हम सो अब ॥
विदुर नें बंधु त्याग क्यों करे । फिर कही कैसे घर में बरे ॥
सूत उवाच—

तुम हम सो पूछौ है जोई । श्री सुक सो नृप पूछ्यौ सोई ॥
श्री सुक नृप सो कछौ पुनि जैसें । मो सो सुनौ अहौ मुनि तैसें ॥
दोहा—श्रीप्रियादास रस रास की, पाय कृपा रस जानि ।

आगम कियौ निपटै सुगम, दुतिय स्कंध बखानि ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां
भाषा रसजानि कृते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ द्वितीय संपूर्णनं ॥



ॐ श्रीराधामाधवौ जयतः ॐ

तृतीय स्कंधः

प्रथम अध्याय

दोहा—रसिक भूप हरि रूप पुनि, श्रीचैतन्य सरूप ।
हृदै कूप अनुरूप रस, उभलो वहै अनूप ॥
आयु हीन लखि बंधु सब, बिदुर त्याग उठि जाय ।
उधव सो संवाद किय तृतीय पहल के ध्याय ॥

श्रीशुक उवाच—

हे नृप तुम पांडव सुखकारी । तिनके भए सु दूत मुरारी ॥
दुर्योधन गृह त्यागति भए । अपनौ मानि बिदुर घर गए ॥
अति संपति सो रह्यौ सुझाय । सोऊ प्रेह बिदुर छिटकाय ॥
वन में जाय मैत्रे सो सो । पूछति भए तुमनि पूछ्यौ जो ॥

राजोवाच—

कहां मिले मैत्रेय बिदुर पुनि । कब संवाद भयौ कहिये मुनि ॥
साधुनि के संमत नीकौ जौ । बिदुर भक्त पूछ्यौ ह्वैहै सो ॥

सूत उवाच—

यो पूछा सर्वग्य महा मुनि । बोले हरषि अहौ राजन सुनि ॥
जब राजा धृतराष्ट्र अंध जो । अपने महा दुष्ट बेटनि सो ॥
पोषन लगो पाप करि आछै । लघु भैया के बेटनि पाछै ॥
हे नृप लाख भवन में जारे । पिता हीन हू ते न बिचारे ॥
जब सुत बहु द्रोपदी रोवति । असुवनि करि कुच कुंमकुंम धोवति ॥
तास केस गहि सभा सु माही । लै आए सुत बरजे नाही ॥
सांचे साधु धर्म सुत नृप बर । जीते जूवा में अधर्म करि ॥
तिननि आय वन तें माग्यौ जब । तिन अति मूढ़ न बट दीनों तब ॥
जब पांडवनि जगतगुरु हरि जो । तिनकी सभा माहि पठ्यै सो ॥
तिननि अमृत से वचन कहे जे । तिन पापिष्ट न कान धरे ते ॥
जब धृतराष्ट्र मंत्र के हेत । बुलए मंत्री बिदुर निकेत ॥

तृतीय स्कंधः

१२७

तिननि जाय तब तहा कह्यौ सो । मंत्री अजो सराहति हैं जो ॥
तुव अपराध धर्म सुत सहै । ताहि देहू बट मो मति यहै ॥
भीम सांप रिस करि फुंकारति । जा ते तुमहू अति भय धारति ॥
अहो जटु कुल के पूज्य मुरारी । जीत लए ताने नृप भारी ॥
पुर में रहत देव विप्रनि जुत । ता नें अपने किये पांडु सुत ॥
दौषमूर्ति यह घर में आहि । पुत्र मानि तुम पोषति जाहि ॥
यह हरि दोषी विमुख सो अहौ । तजो बेग कुल मंगल चहौ ॥
क्रोध भर्यौ दुर्योधन यह सुनि । संग दुसासन सकुनि कर्न पुनि ॥
परम साधु श्रीबिदुर जु आहि । हे राजन निरादर्यौ ताहि ॥
अहो ह्या कों नें याहि बुलायौ । दासी पुत्र कुटिलता छायौ ॥
जा सों पलै तास कौ नाही । देखो मिलि रह्यौ बैरिन माही ॥
काढ़ो बेग न राखो पुर में । बचन बान ये छिद गए उर में ॥
धनुष द्वार धरि जात सु भए । माया मानिन दुख तैं छए ॥
पुन्य कौरवनि कौ हौ जितौ । बिदुर रूप धरि गयौ सु तितौ ॥
हरि की मुक्ति छेत्र जहां जहां । पुन्य हेत ते गमनें तहां तहां ॥
पुन्य बाग गिर कुंज सरित सर । गमनें इकले जहा जहा रहि ॥
सो वे धरनि तीर्थनि न्हाय । बहुर पवित्र जीवका खाय ॥
लखे न सुजन भेष अस धरे । हरि के तोषक वृत आवरे ॥
अैसें भारत खंड मभारी । फिरत प्रभास गए सुखकारी ॥
इतनें राजचक्र वै है जो । हरि सहाय करि कियौ पाथे सो ॥
तहा सुहृदन कौ नास सुन्यौ यौ । बंस अग्नि करि वासनि कौ ज्यौ ॥
तिनको सांच करति पुनि आछे । चले सरसुती समुहें पाछे ॥
अग्नि वायु पृथु मनु सुक्रासित । आवदेव गुह गो सुदास त्रित ॥
इनके जुदे जुदे तीरथ जे । तहा बिदुर जू नें सेये ते ॥
औरौ सेये हरि के धाम । रचे जु देव रिषिन अभिराम ॥
जिनमें हरि मंदिर चक्रांकित । जिनके देखे हरि आवति चित ॥
तहां ते लंघि बहु देस सुधीर । मत्स्य कुरु जंगल सौबीर ॥

तृतीय स्कंधः

१२८ पुनि आए श्रीजमना जहां । लखे भागवत उधव तहां ॥
 सांत मूर्ति पुनि हरि के दास । सिष्य बृहस्पति के गुनरास ॥
 लपटि प्रेम सों पुलकित गात । बंधुनि की पूछी कुसलात ॥
 बिधि बिनती सो प्रगटे अहौ । राम स्याम सुख सो है कहौ ॥
 कहौ कौरवन के हितकारी । श्रीबसुदेव सुखी हे भारी ॥
 हमरे बहनेऊ उदार सो । पित ज्यौ बहननि कों तोषति जो ॥
 सेनानी प्रद्युम्न जु अहौ । महावीर सुख सो है कहौ ॥
 पहले जन्म काम जो गायौ । द्विजनि अराध रुक्मिणी पायौ ॥
 जदु दासार्ह भोजपति अहौ । अपसेन सुख सो है कहौ ॥
 राज आस कौ छोड़ि रह्यौ जो । कमलनेन पुनि भूप दियौ सो ॥
 महारथी हरि की सम अहो । सांब नाम सुख सो है कहौ ॥
 स्वाम कार्तिक पहल जन्म जो । व्रत करि जांबवंती पायो सो ॥
 अर्जुन ते धनुर्विद्या पाई । सो सात्यकि सुख सो सुखदाई ॥
 जिन हरि सेवा करि हरि की गति । पाई जो जोगिन को दुरये अति ॥
 हरि के भक्त अनघ पुनि अहो । श्रीअक्रूर सुखी है कहौ ॥
 जो हरि पद रज में लुटि गयौ । प्रेम पाय के बिहल भयौ ॥
 हरि की मात देवकी जू जो । कहा अदित ज्यो सुख सो है सो ॥
 जो स्व गर्भ में देवहि अैसे । धरति भई श्रुति जग्यनि जैसे ॥
 पुनि साधुन सुखदाई अहौ । श्रीअनिरुध सुखी हैं कहौ ॥
 जिन्हें सद् कौ कारन गावें । मन के प्रेरक ईस बतावें ॥
 औरौ हरि कौ ह्वै अनन्य जे । अनुगत भए हे सुख सो सो ले ॥
 चारुदेव गद हृदीकादि जुत । बहुरो प्रिय सतभामा के सुत ॥
 अर्जुन कृष्ण भुजन करि अहौ । पालति धर्म धर्मसुत कहौ ॥
 बिभी देखि जिह सभा मंभारी । दुर्योधन दुख पायौ भारी ॥
 अहि सो भीम भरपौ रिस माही । अपराधिन पै करी कि नाही ॥
 अहौ गदा की फेरन माही । जा के पाव सहै धर नाही ॥
 बड़े तेजस्वी अर्जुन अहौ । बैरी मारि सुखी हे कहौ ॥

गौडीयग्रन्थगौरवः—

सानुवाद संस्कृत भाषा में प्रकाशित

- १—अर्चविधिः (संगृहीत)
- २—प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति)
- ३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजी)
- ४—गोवर्द्धनशतक (श्रीकेशवाचार्य कृत)
- ५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रसरस्व)
- ६—नित्यक्रियाशुद्धिः (संगृहीत)
- ७—ब्रजभक्तिविलासः (श्रीनारायणभट्टजी)
- ८—निकुञ्जरहस्यस्तवः (श्रीमद्वरुणगोस्वामि)
- ९—महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्म)
- १०—स्मरणमङ्गलस्तोत्रम् (श्रीमद्वरुणगोस्वामि)
- ११—नवरत्नम् (श्रीहरिरामव्यासजी)
- १२—गोविन्दभाष्यम् (श्रीपादबलदेवजी कृत)
- १३—ग्रन्थरत्नपंचकम्
 - [१] श्रीकृष्णलीलास्तवः (श्रीपादसनातनजी)
 - [२] श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्री श्रीरूप)
 - [३] श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्ण)
 - [४] श्रीब्रजविलासस्तवः (श्रीश्रीरघुनाथदासजी)
 - [५] श्रीसङ्कल्पकल्पद्रुमः (श्रीविश्वनाथ च)
- १४—श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सञ्चित)
- १५—ग्रन्थरत्नपट्टकम् (सञ्चित)
- १६—श्रीगोवर्द्धनभट्टग्रन्थावली
- १७—सहस्रनामत्रयम् अथवा ग्रन्थरत्ननवकम्
- १८—श्रीनारायणभट्टचरितामृतम् (श्रीजानकीप्रसादजी)
- १९—उद्धवसन्देशः (श्रीमद्वरुणगोस्वामिविरचित)
- २०—हंसदूतम् (श्रीमद्वरुणगोस्वामिविरचित)
- २१—श्रीमथुरामाहात्म्यम् (श्रीमद्वरुणगोस्वामिविरचित)
- २२—मुरलीमाधुरी (सञ्चित)